कृष्णयजुर्वेदगतकठशाखोक्ता
कठोपनिषद
प्रथमोऽध्यायः

कृष्णयजुर्वेदगतकठशाखोक्ता

कठोपनिषद्

प्रथमोऽध्यायः

[भूमिका, शाङ्करभाष्य, अन्वय, हिन्दीभाषानुवाद, टिप्पणी-सहित]

व्याख्याकार

डॉ० राजमणि पाण्डेय

एम० ए०, पी-एच० डी०, साहित्यरत्न

संशोधन-परिवर्धन

डा० रविनाथ मिश्र

एम० ए०, पी-एच० डी०

संस्कृत विभाग

गोरखपुर विश्वविद्यालय
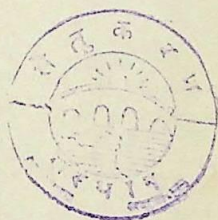
विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

भूमिका

कठोपनिषद्

१. वेद शब्द का अर्थ है ज्ञान।

२. "मन्त्रब्राह्मणयोर्वेद नामधेयम्" (आपस्तम्ब परिभाषा ३१)। अर्थात् मन्त्र और ब्राह्मण का नाम वेद है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद--- इन चारों वेदों के मन्त्र भाग को संहिता कहते हैं। ब्राह्मण के तीन भाग होते हैं--ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्। इस प्रकार वैदिक साहित्य के ४ मुख्य भाग हैं--संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्। उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार इन चारों भागों को वेद नाम से पुकार सकते हैं।

यज्ञ के कर्म तथा मन्त्रों की व्याख्या करनेवाले ग्रन्थ ब्राह्मण कहे जाते हैं—

(१) ब्राह्मणं नाम कर्मणस्तन्मन्त्राणां च व्याख्यानग्रन्थः।

--भट्टभास्कर तै० सं० १-५-१ भाष्य।

(२) नैरुक्त्यं यस्य मन्त्रस्य विनियोगः प्रयोजनम्।
प्रतिष्ठानं विधिश्चैव ब्राह्मणं तदिहोच्यते॥

--वाचस्पति मिश्र।

अरण्य में पठित होने के कारण आरण्यक नाम है---

अरण्याध्ययनादेतदारयकमितीयते।
अरण्ये तदधोयोतेत्येवं वाक्यं प्रवक्ष्यते॥

--सायण तै० आ० भाष्य, श्लोक ६।

आरण्यकों में आध्यात्मिक विषय-विवेचन मुख्य है। उपनिषद् का मुख्यार्थ है, ब्रह्मविद्या। उपनिषदों को वेदान्त भी कहते हैं; क्योंकि ये वेदों के अन्तिम भाग हैं---'वेदानाम् अन्तः वेदान्तः।' ब्रह्म-सूत्र तथा गीता का आश्रय उपनिषद् ही हैं।

१. ऋग्वेद के मन्त्रों को ऋक् या ऋचा कहते हैं। "जिनमें अर्थवशात् पादव्यवस्था है, उन छन्दोबद्ध मन्त्रों को ऋक् या ऋचा कहते हैं"—

"तेषामृग् यथार्थवशेन पादव्यवस्था"

जै० सू० २–१-३५।

२. सामवेद के मन्त्र साम कहे जाते हैं। साम का शब्दार्थ हैं—"ऋचाओं के ऊपर गाये जानेवाले गान"—

"गीतिषु सामाख्या"

जै० सू० २–१–३६।

ऋक् मन्त्रों के लिए भी साम शब्द का प्रयोग मिलता है।

३. यजुर्वेद के मन्त्रों को यजुष् के नाम से पुकारा जाता है। "ऋकों तथा सामों से व्यतिरिक्त गद्यात्मक मन्त्रों को यजुष् कहते हैं"—

"शेषे यजुः शब्दः"

—जै० सू० २–१–३६।

"गद्यात्मको यजुः"

यजुर्वेद में छन्दोबद्ध मन्त्र भी मिलते हैं। वास्तव में यजुष् यज्ञ-सम्बन्धी मन्त्र हैं जो गद्य और पद्य दोनों रूपों में मिलते हैं। ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद—इन तीनों वेदों को त्रयी कहते हैं।

४. अथर्वण तथा अङ्गिरस ऋषियों के द्वारा दृष्ट अनेक मन्त्रों से युक्त वेद को अथर्ववेद अथवा ब्रह्मवेद अथवा अङ्गिरोवेद अथवा अथर्वाङ्गिरसवेद कहते हैं। अथर्ववेद को मिलाकर ४ वेद हुए—"चत्वारो वेदाः"।

उपर्युक्त ४ वेदों में यजुर्वेद के २ भेद मिलते हैं—शुक्ल-यजुर्वेद एवं कृष्ण-यजुर्वेद। शुक्ल-यजुर्वेद में केवल मन्त्रों का सङ्ग्रह मिलता है तथा कृष्ण-यजुर्वेद में मन्त्रों के साथ-साथ ब्राह्मण अंश भी मिलता है। शुक्ल-यजुर्वेद की संहिता को वाजसनेयी संहिता कहते हैं। कृष्ण-यजुर्वेद की ४ शाखाएँ मिलती हैं—

(१) तैत्तिरीय,

(२) मैत्रायणीय,

(३) कठ,
(४) कपिष्ठल-कठ।

इन शाखाओं में कठ शाखा के अन्तर्गत कठोपनिषद् आती है।

उपनिषद् साहित्य

मुक्तिकोपनिषद्* के अनुसार उपनिषदों की संख्या १०८ है। निम्नलिखित १० उपनिषद् मुख्य हैं—

ईश केन कठ प्रश्न मुण्डमाण्डूक्यतित्तिरिः।
ऐतरेयं च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं दश॥

—मुक्तिकोपनिषद्।

(१) ईश, (२) केन, (३) कठ, (४) प्रश्न, (५) मुण्डक, (६) मांडूक्य, (७) तैत्तिरीय, (८) ऐतरेय, (९) छान्दोग्य, (१०) बृहदारण्यक—ये १० उपनिषद् प्राचीन तथा प्रामाणिक माने जाते हैं। इन पर शाङ्करभाष्य मिलता है। इनके साथ कौषीतकि, श्वेताश्वतर तथा मैत्रायणीय भी प्राचीन माने गये हैं।

दाराशिकोह की प्रेरणा से ५० उपनिषदों का फारसी अनुवाद १६५७ ई० में दिल्ली में समाप्त हुआ। इन फारसी अनुवादों को फ्रेञ्च यात्री बर्नियर फ्रांस ले गया। आक्वेंतोल दू पेराँ को यह अनुवाद १७७५ ई० में मिला। उसने १८०१ तथा १८०२ ई० में फ्रेंच तथा लैटिन भाषाओं में इसका अनुवाद प्रस्तुत किया। शापेनहावर नामक जर्मन तत्त्ववेत्ता इसी अनुवाद के द्वारा उपनिषदों से प्रभावित हुआ। शापेनहावर की कुछ उक्तियों का अनुवाद निम्नलिखित है :—

१. "मेरी दृष्टि में उपनिषदों के द्वारा वेदों की उपलब्धि से उन्नीसवीं शताब्दी अपने से पहले की सभी शताब्दियों से अधिक सौभाग्यवान् है।"

—वेल्ट अल्स विल्ले उण्ट फोरस्टेलुङ्ग
प्रथम संस्करण, भूमिका, पृष्ठ १३।

---

* भूमिका के अन्त में उपनिषदों की सूची देखिये।

२. "उस अनुवाद को पढ़ने से मुझे सर्वाधिक पूर्ण विश्वास का अनुभव होता है और यह विश्वास पूर्णरूपेण उचित है। वेदों की पवित्र आत्मा में उपनिषदों की प्राणवायु सञ्चरित होती है। जो भी फारसी-लैटिन के अध्ययन के द्वारा उस अनुपम ग्रन्थ से परिचित है उसका अन्तस्तल इस आत्मा से सोत्कम्प हो उठता है। प्रत्येक पंक्ति दृढ़, निश्चित तथा सर्वत्र सम अर्थ को प्रकट करती है। प्रत्येक वाक्य से गम्भीर, मौलिक तथा अलौकिक विचार उत्पन्न होते हैं तथा सम्पूर्ण एक उन्नत तथा पवित्र आत्मा से परिव्याप्त है। हम भारतीय वायुमण्डल तथा अपने से सम्बद्ध आत्माओं के मौलिक विचारों से परिव्याप्त हो जाते हैं। हमारा मस्तिष्क यहूदी अन्धविश्वासों तथा तत्सम्बद्ध तार्किक मतों से मुक्त हो जाता है। **सम्पूर्ण विश्व में उपनिषदों के अध्ययन से बढ़कर लाभदायक तथा अभ्युदय को प्राप्त कराने वाला और कुछ नहीं है। यह मेरे जोवन का निर्वाण है तथा यह मेरी मृत्यु का निर्वाण होगा।"**

पारेर्गा (तृतीय संस्करण) ii, पृष्ठ ४२६।

३. "उपनिषदों का सर्वात्मवाद जल्दी या देर में लोगों का धर्म बनकर रहेगा।"

वही i पृष्ठ ५९।

४. उपनिषद् सर्वोत्तम ज्ञान की सृष्टियाँ हैं।"

—वही ii, पृष्ठ ४२८।

मैक्सम्यूलर कहते हैं—"संस्कृत-साहित्य के प्रति मेरा सच्चा अनुराग सबसे पहले उपनिषदों के द्वारा प्रदीप्त हुआ था। सन् १८४४ ई० में बर्लिन में शेलिंग के भाषण को सुनते समय मेरा ध्यान उन प्राचीन दार्शनिक ग्रन्थों की ओर आकृष्ट किया गया था।"

—सैक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट, वॉल्यूम १, दि उपनिषद्स भूमिका, पृष्ठ ६५।

कठोपनिषद् का प्रतिपाद्य

उपनिषद् शब्द की व्युत्पत्ति एवम् अर्थ

'उप' और 'नि' उपसर्गपूर्वक 'सद्' धातु से 'क्विप्' प्रत्यय लगने पर 'उपनिषद्' यह रूप सिद्ध होता है। 'सद्' धातु के तीन अर्थ विशरण (नाश), गति और अवसादन (शिथिल करना) हैं।

मोक्ष की कामना करनेवाला पुरुष विषयों से विरक्त होकर ब्रह्मविषयक विद्या का निष्ठापूर्वक अनुशीलन करता है। ऐसा होने से संसार की बीजभूता अविद्या आदि का नाश—विशरण होता है और ऐसा होने कारण 'विशरण' इस अर्थ के योग से 'उपनिषद्' शब्द से यह विद्या कही जाती है। यही ब्रह्मविद्या मोक्षकामियों को परब्रह्म के पास पहुँचाती है, इस कारण भी यह विद्या इस 'गति' अर्थ के योग से 'उपनिषद्' ही है। जो, भूः, भुवः आदि लोकों से पूर्व होनेवाले ब्रह्मा से उत्पन्न और ज्ञाता अग्नि से सम्बन्ध रखनेवाली है तथा जो स्वर्गलोकरूप फल-प्राप्ति का हेतु होने के कारण विभिन्न लोकों में गर्भवास, जन्म, जरा आदि उपद्रव-समूहों का अवसादन करनेवाली है ऐसी अग्निविद्या भी इस 'अवसादन' अर्थ के योग से 'उपनिषद्' शब्द से कही जाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'उपनिषद्' का अर्थ विद्याविशेष है। किन्तु इसके अतिरिक्त अध्येता-गण इस शब्द से ग्रन्थ का भी उल्लेख करते हैं अतः 'उपनिषद्' शब्द के ग्रन्थ होनेवाले अर्थ की संगति इस प्रकार है कि उपर्युक्त गुणविशिष्ट विद्याओं का ज्ञान जिस ग्रन्थ में उपलब्ध हो वह ग्रन्थ भी 'उपनिषद्' है।

कठोपनिषद् का प्रतिपाद्य विषय

'चिती', 'किती', 'सञ्ज्ञाने' धातु से नचिकेता शब्द व्युत्पन्न होता है जिसका अर्थ है 'जिज्ञासु'। इस ग्रन्थ में यम और नचिकेता के संवाद के माध्यम से ब्रह्मविद्या का विशद विवेचन किया गया है। अन्य उपनिषदों की भाँति तत्त्वज्ञान के गम्भीर विवेचन के अतिरिक्त नचिकेता के चरित्र का अनुपम आदर्श भी जनसमुदाय के सम्मुख उपस्थित करना इसका उद्देश्य है।

सर्वमेध यज्ञ के कर्ता नचिकेता के पिता वाजश्रवा ने जब उत्तम एवं दूध देनेवाली गायों को पुत्रधन के रूप में सुरक्षित रखा और जीर्ण-शीर्ण गायों को ब्राह्मणों को दान के रूप में दिया, उस समय बालक नचिकेता के मन में आस्तिक्य बुद्धि ने जन्म लिया और उसने सोचा कि इस प्रकार की गायों को दान देने से व्यक्ति अनन्द (आनन्दरहित) लोक को प्राप्त होता है, फिर मेरे पिता जो सर्वमेध यज्ञ कर रहे हैं उसमें सर्वस्व एवं सर्वप्रिय वस्तुओं का दान

कर दिया जाता है। उसके मन में स्वाभाविक प्रश्न उठा, उसने पिता वाज-श्रवा से पूछा—

"......कस्मै मां दास्यसीति"

—कठ० १. १. ४।

नचिकेता के मन में पिता के उद्धार की बात समायी थी, अतः इस उक्ति के द्वारा पिता का मोहभंग आवश्यक ही था।

पिता का पुत्र के प्रति मोह आवश्यक ही था। वह (वाजश्रवा) चुप रहकर प्रश्न का उत्तर टालना चाहता था, किन्तु योग्य पुत्र नचिकेता अपने निश्चय पर दृढ़ रहनेवाला था। कई बार इस प्रश्न को पिता से पूछा। खीझ-कर पिता ने कहा—

"......मृत्यवे त्वां ददामीति"

—कठ० १. १. ४।

यह जानकर भी पिता ने क्रोधवश ऐसा कहा है, नचिकेता ने पितृवचन की उपेक्षा नहीं की।

पिता की अनुज्ञा प्राप्त कर नचिकेता यमलोक पहुँचा। वहाँ पहुँचने पर, यमराज के अनुपस्थित रहने पर वह तीन रात्रियों तक बिना अन्न-जल ग्रहण किये स्थित रहा। बिना यमराज से भेंट किये अन्न-जल के न ग्रहण करने से नचिकेता की सत्यनिष्ठा का अनुमान लगाया जा सकता है। जिसके लिए शरीर का दान हो चुका है, जिस शरीर पर किसी अन्य का प्रभुत्व स्थापित हो चुका है, उस शरीर को बिना स्वामी को सौंपे अन्न-जल स्वीकार भी कैसे किया जा सकता था! तीन दिनों बाद यमराज आये। देखा, सुना, ब्राह्मण अतिथि ने तीन दिनों तक उपवास किया है। वे जानते थे अतिथि की उपेक्षा से कितना बड़ा अनर्थ होता है, अतः उन्होंने उस उपवास के लिए प्रायश्चित्त का विधान सोचा और कहा—

तिस्रो रात्रीर्यदवात्सीर्गृहे मे, अनश्नन्ब्रह्मन्नतिथिर्नमस्यः।
नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन्स्वस्ति मेऽस्तु, तस्मात्प्रति त्रीन्वरान्वृणीष्व॥

—कठ० १. १. ९।

तीन रात्रि तक नमस्कार के योग्य ब्राह्मण अतिथि ने उपवास किया है। अतएव तीन वर माँगने के लिए कहना उचित भी था।

नचिकेता ने यमराज से जिन वरों को जिस क्रम से माँगा है, उस क्रम में भी एक रहस्य छिपा हुआ है। उन वरों में से सबसे पहला वर था पितृ-परितोष। नचिकेता ने यमराज से कहा--

शान्तसङ्कल्पः सुमना यथा स्याद्वीतमन्युर्गौतमो माभि मृत्यो।
त्वत्प्रसृष्टं माभिवदेत्प्रतीत, एतत्त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे॥

—कठोपनिषद् १-१-१०।

पिता की इच्छा के विरुद्ध नचिकेता के धर्मराज के पास आने के कारण पिता वाजश्रवा का मन खिन्न था, उनका चित्त अशान्त था। अतः नचिकेता के लिए यह आवश्यक था कि वह अपने पिता को प्रसन्न कर सके, उसके अशान्त मन को शान्त कर सके। पिता को बिना शान्त संकलपवाला किए पुत्र (नचिकेता) को शान्ति कहाँ ? अतः इस पितृपरितोष-विषयक वर को ही सर्वप्रथम नचिकेता ने यमराज से माँगा।

लौकिक चिन्ताओं से मुक्त होकर नचिकेता ने पारलौकिक चिन्ताओं से मुक्ति चाही। यह स्वाभाविक ही था। उन्होंने स्वर्ग की साधनभूत अग्निविद्या का ज्ञान यमराज से माँगा—

'स त्वमग्निं स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो,
प्रब्रूहि त्वं श्रद्दधानाय मह्यम्।
स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्त,
एतद्द्वितीयेन वृणे वरेण।'

—कठ० १. १. १३।

यमराज का स्वर्ग के साधनभूत अग्नि का उपदेश देना भी उचित ही है क्योंकि शुभ और अशुभ कर्मों का फल देनेवाला यह यमराज पुण्यकर्मों के फल-स्वरूप स्वर्ग तथा उसके साधन अग्नि को अच्छी प्रकार जानता है।

यमराज ने योग्य शिष्य समझकर स्वर्ग की साधनभूत अग्निविद्या का उपदेश नचिकेता को दिया। यही नहीं, उस अग्निविद्या का नामकरण भी उसी के नाम से कर दिया।

नचिकेता स्वार्थी नहीं था। उसने स्वर्ग की साधनभूता अग्निविद्या-रूप वर माँगा, इससे उसमें स्वार्थं की कल्पना नहीं करनी चाहिए। उसके मन में तो मनुष्यमात्र की हितचिन्ता व्याप्त थी। प्राणिमात्र के हित में ही उसका भी हित निहित था। यमराज द्वारा तृतीय वर माँगने के लिए आदेश देने पर वह 'ब्रह्मविद्या' विषयक तृतीय वर को माँगता है। यमराज परीक्षा लेना चाहते हैं। वे जानना चाहते हैं कि 'ब्रह्मविद्या' के ज्ञान के योग्य नचिकेता है या नहीं। वे नाना प्रकार के प्रलोभन देते हैं और चाहते हैं कि मरणविषयक प्रश्न को नचिकेता न पूछे—

ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके सर्वान्कामांश्छन्दतः प्रार्थयस्व।
इमा रामाः सरथाः सतूर्या न हीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः॥
आभिर्मत्प्रत्ताभिः परिचारयस्व नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षीः॥

नचिकेता अत्यन्त ज्ञानी पुरुष है। वह जानता है कि ब्रह्मज्ञान के मार्ग में सभी प्रकार का कामनाएँ बाधक हैं। अतएव उसने दीर्घजीवी पुत्र-पौत्र, स्वर्ण, हाथी आदि से युक्त साम्राज्य, दीर्घजीवन, रथ तथा वाद्यसहित सुन्दरियों आदि का त्याग कर दिया। नचिकेता जानता है कि अनित्य वस्तुओं का ग्रहण इन्द्रियों के तेज को नष्ट कर देता है, वह जानता है कि जीवन अल्प ही है और वह जानता है कि यह मनुष्य धन से सन्तुष्ट नहीं किया जा सकता है, इसीलिए वह मृत्यु-विषयक प्रश्न को यमराज से पूछता है। वह जानता है कि ब्रह्मविद्या के ज्ञान के तुल्य अन्य कोई ज्ञान नहीं है। वह जराग्रस्तता, मरणधर्मिता एवं अधःनिवास की अपेक्षा नित्य युवावस्था और अमरणधर्मिता को श्रेयस्कर समझता है—

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः।
अपि सर्वं जीवितमल्पमेव तवैव वाहास्तव नृत्यगीते॥
न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत्त्वा।
जीविष्यामो यावदीशिष्यसि त्वं वरस्तु मे वरणीयः स एव॥
अजीर्यताममृतानामुपेत्य जीर्यन्मर्त्यः क्वधःस्थः प्रजानन्।
अभिध्यायन् वर्णरतिप्रमोदानतिदीर्घे जीविते को रमेत॥
यस्मिन्निदं विचिकित्सन्ति मृत्यो यत्साम्पराये महति ब्रूहि नस्तत्।
योऽयं वरो गूढमनुप्रविष्टो नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीते॥

—कठोपनिषद् १।१।२६–२९

नचिकेता के मन में मृत्यु के सम्बन्ध में तीव्र जिज्ञासा और आत्मदर्शन की अनवरत पिपासा समायी हुई है इसीलिए उसने ब्रह्मज्ञान-विषयक अत्यन्त गूढ़ इस तृतीय वर को माँगा ।

योग्य शिष्य की परीक्षा लेने के उपरान्त 'ब्रह्मविद्या' का उपदेश देना स्वीकार कर यमराज ने कहना प्रारम्भ किया कि श्रेय (विद्या) और प्रेय (अविद्या) अन्य हैं । ये दोनों भिन्न प्रयोजनवाले होते हैं, जो व्यक्ति श्रेय को ग्रहण करता है, उसका कल्याण होता है और जो प्रेय को ग्रहण करता है वह पुरुषार्थ से च्युत हो जाता है । यह आत्मतत्व बहुतों को सुनने के लिए भी प्राप्य नहीं है सुनते हुए भी लोग इसको नहीं जानते हैं । इस आत्मा का प्रवचनकर्ता अनेक में एक होता है, इसको ग्रहण करनेवाला पुरुष भी निपुण होता है तथा निपुण आचार्य के द्वारा उपदिष्ट इसको जाननेवाला भी आश्चर्य पुरुष होता है । बहुत प्रकार से समझा जाता हुआ भी यह आत्माहीन मनुष्य के द्वारा उपदिष्ट होने पर सम्यक् रूप से ज्ञात नहीं हो सकता है । यह आत्मा अणु से अधिक सूक्ष्म है और तर्क का विषय नहीं है—

'अणीयान्ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात्'

—कठोपनिषद् १-२-८ ।

यह नित्य आत्मा अनित्य साधनों से प्राप्त नहीं होता है ।

न ह्यध्रुवैः प्राप्यते हि ध्रुवं तत्'

—कठोपनिषद् १-२-१० ।

आत्मतत्त्व के ज्ञान द्वारा धीर, हर्ष और शोक को छोड़ देता है—

तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम् ।
अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति ॥

—कठोपनिषद् १-२-१२

यह आत्मतत्त्व धर्म-अधर्म, कृत-अकृत और भूत-भविष्य से अलग है । सभी वेदों का प्रतिपाद्य विषय, तपस्या तथा ब्रह्मचर्य का उद्देश्यभूत यह 'ॐ' पद ही है । यह 'ॐ' अक्षर ही पर एवं अपर ब्रह्म है—

'एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्' ।

—कठोपनिषद् १-२-१६ ।

यह 'ॐ' अक्षर ही श्रेष्ठ एवं पर आलम्बन है। इस आशय को जानकर जीव ब्रह्मलोक में महान् होता है—

एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते॥

—कठोपनिषद् १-२-१७।

यह आत्मा अजन्मा, अमरणधर्मा है। यह नित्य, सनातन और पुरातन आत्मा शरीर के मारे जाते समय नहीं मरता है—

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

कठोपनिषद् १-२-१८।

यह आत्मा अणु से भी अणु और महान् से भी महान् है—

'अणोरणीयान् महतो महीयान्'

—कठोपनिषद् १-२-१९।

यह आत्मा शरीरों में शरीररहित, अनित्यों में नित्यस्वरूप और व्यापक है। इसे प्रवचन (वेदाध्ययन), मेधा या अत्यधिक अध्ययन से नहीं प्राप्त किया जा सकता है—

'नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।'

—कठोपनिषद् १-२-२३।

रथ-रूपक की कल्पना

शरीर रथ है; बुद्धि सारथि है; मन लगाम है; इन्द्रियाँ घोड़े हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—ये विषय ही मार्ग हैं, जिन पर यह रथ चलता है। इस रथ का रथी आत्मा है। शरीर, इन्द्रिय तथा मन से युक्त इस आत्मा को मनीषी लोग भोक्ता कहते हैं।

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥ ३॥

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान् ।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥ ४ ॥

—कठोपनिषद् १–३–३,४ ।

जिस प्रकार लोक में समीचीन सारथि तथा लगाम से युक्त घोड़े वश में रहते हैं अन्यथा नहीं, उसी प्रकार सम्यक् बुद्धि तथा युक्त मन के होने पर ही इन्द्रियाँ वश में रहती हैं, अन्यथा नहीं। बुद्धिरूप सारथि तथा मनरूप प्रग्रह से युक्त होने पर संसार-मार्ग से पार विष्णु-पद को प्राप्त होता है—

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान्नरः ।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥

—कठोपनिषद् १–३–९ ।

कठोपनिषद् के विषय में विद्वानों का विवाद

१. कोलब्रुक[1] कठोपनिषद् को सामवेद से सम्बद्ध मानते हैं जिसका खण्डन वेबर करते हैं।

२. मैक्सम्यूलर[2] प्रभृति विद्वानों का कथन है कि प्रथम अध्याय की प्रथम वल्ली में १५वाँ, १७वाँ तथा १८वाँ मन्त्र बाद को किसी ने जोड़ दिया; क्योंकि यम ने तीन ही वर देने को कहा था, न कि चौथा वर भी। यम ने मन्त्रसंख्या १–२–३ में कहा कि तुम इस सृङ्का को नहीं प्राप्त हुए—

"स त्वं प्रियान् प्रियरूपांश्च कामानभिध्यायन्नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः ।
नैतां सृङ्कां वित्तमयीमवाप्तो यस्यां मज्जन्ति बहवो मनुष्याः ॥"

—कठोपनिषद् १-२-३ ।

आगे सृङ्का चतुर्थ वर के रूप में किसी ने प्रक्षिप्त कर दिया—

सृङ्कां चेमामनेकरूपां गृहाण ।

—कठोपनिषद् १-१-१६ ।

---

१. मिसलैनियस एसेज. १-९६ नोट।

२. सैक्रेड बुक्स ऑफ़ द ईस्ट; वॉल्यूम १५; दि उपनिषद्स, भाग २, भूमिका, पृष्ठ १५।

इस चतुर्थ वर के बोधक तीनों मन्त्र (१६, १७, १८) प्रक्षिप्त हैं। इन लोगों का कथन है कि "तवैव नाम्ना भवितायमग्निः" (१-१-१६) यह चतुर्थ वर भी प्रक्षिप्त है। प्रक्षिप्त होने के लिए एक कारण यह भी दिया जाता है कि १-१-१५ मन्त्र में "पुनरेवाह तुष्टः" कहकर फिर अगले १-१-१६ श्लोक में "तमब्रवीत्" कहना सङ्गत नहीं है; क्योंकि पुनरुक्ति-दोष आ जाता है। इसके अतिरिक्त १-१-१९ मन्त्र में "तवैव" इन दो पदों को अधिक मानकर छन्दोभङ्ग का दोष भी लगाया जाता है। पूर्व तथा उत्तर मन्त्रसहित विवादास्पद तीनों मन्त्र निम्नलिखित हैं :—

लोकादिमग्निं स उवाच तस्मै या इष्टका यावतीर्वा यथा वा।
स चापि तत्प्रत्यवदद्यथोक्तमथास्य मृत्युः पुनरेवाह तुष्टः॥

—कठोपनिषद् १-१-१५।

तमब्रवीत्प्रीयमाणो महात्मा वरं तवेहाद्य ददामि भूयः।
तवैव नाम्ना भवितायमग्निः सृङ्कां चेमामनेकरूपां गृहाण॥१६॥
त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरेत्य सन्धिं त्रिकर्मकृत्तरति जन्ममृत्यू।
ब्रह्मजज्ञं देवमीड्यं विदित्वा निचाय्येमाँ शान्तिमत्यन्तमेति॥१७॥
त्रिणाचिकेतस्त्रयमेतद्विदित्वा य एवं विद्वाँश्चिनुते नाचिकेतम्।
स मृत्युपाशान्पुरतः प्रणोद्य शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके॥१८॥
एष तेऽग्निर्नचिकेतः स्वर्ग्यो यमवृणीथा द्वितीयेन वरेण।
एतमग्निं तवैव प्रवक्ष्यन्ति जनासस्तृतीयं वरं नचिकेतो वृणीष्व॥१९॥

इस मत के विपरीत कठोपनिषद् के द्वितीय अध्याय को पश्चात्तन माननेवाले वेबर का कहना है कि १-१-१७ मन्त्र में 'ब्रह्मजज्ञ" रूप प्राचीन है।

'पहले इस उपनिषद् का प्रथम अध्याय मात्र था, बाद को किसी ने दूसरा अध्याय बनाकर जोड़ दिया'—यह मत वेबर, डायसन प्रभृति विद्वान् प्रस्तुत करते हैं*। अन्य विद्वान् इन मतों का खण्डन करते हैं।

---

* १. अल्ब्रेख्ट वेबर—इन्दिशेष्टूडियन २; १९७-८ लीपज़िग, १८५३।
 २. हर्टल—दी वाइसहाइट देयर उपनिषदेन—म्यूनिच, १९२१।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में नचिकेता की कथा

तैत्तिरीय ब्राह्मण के तृतीय काण्ड के एकादश प्रपाठक के अष्टम अनुवाक् में नचिकेता की कथा मिलती है। तैत्तिरीय ब्राह्मण तथा कठोपनिषद् में निम्न पदावली उभयनिष्ठ हैं—

"उशन् ह वै वाजश्रवसः सर्ववेदसं ददौ। तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस। तँ ह कुमारँ सन्तं दक्षिणासु नीयमानासु श्रद्धा विवेश। स होवाच तत कस्मै मां दास्यसीति। द्वितीयं तृतीयं तँ होवाच। तँ होवाच मृत्यवे त्वां ददामीति।"

इसके अतिरिक्त तैत्तिरीय ब्राह्मण तथा कठोपनिषद् में इस आख्यान के रूपों में समानता के साथ कुछ भेद भी है। तैत्तिरीय ब्राह्मण की कथा इस प्रकार है—

गौतम वाजश्रवस् नामक मुनि ने विश्वजित् याग किया। उनके नचिकेता नाम का पुत्र था। जब ऋत्विजों को दक्षिणास्वरूप गायें दी जा रही थीं, तब नचिकेता के मन में श्रद्धा उत्पन्न हुई। उसने पिता से कहा—"पिताजी! मुझे किसे दे रहे हैं।" इस वचन को दुबारा और फिर तिबारा कहा। पिता ने कहा—"मैं तुझे मृत्यु को देता हूँ।" यहाँ तक तैत्तिरीय ब्राह्मण तथा कठोपनिषद्

---

३. हिलेब्राण्ड्ट् अडस ब्राह्मणज़ उण्ट उपनिषदेन।
४. डोयसन—जेखट्सिक्र उपनिषद्स।
५. रेनो—कठ उपनिषद्।
६. राव्सन्—कठ उपनिषद् आक्सफोर्ड १९३४, सीरीज़ ६७।
७. फ्रीडरिख वेल्लर—फेर्ज़ूख आइनेर क्रिटिक देयर कठोपनिषद्, बर्लिन, १९५३।
८. कारपेण्टियर—काठक उपनिषद्।
९. आटो रुडाल्फ—दी कठ उपनिषद्।
१०. रोअर—बिब्लिओथिका इण्डिका १५, संख्या ४१ और ५०, कलकत्ता, १८५३।
११. ह्विटनी—ट्रान्सलेशन ऑफ दी कठ उपनिषद्, बोस्टन, १८९०।

की कथाओं में अभेद है। पिता के शाप देने के बाद, तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार अशरीरिणी वाणी ने नचिकेता से कहा—

"हे नचिकेतः ! तुम्हारे पिता के कथन का अभिप्राय है कि तुम मृत्यु के पास जाओ—

"तं ह स्मोत्थितं वागभिवदति ॥१॥ गौतमकुमारमिति स होवाच। मृत्यवे त्वां ददामीति।"

अशरीरिणी वाणी ने नचिकेता से कहा—'हे नचिकेतः ! जब यमराज प्रयास करें तब तुम उनके घर जाओ और तीन रात बिना भोजन किये हुए निवास करो। जब यमराज तुमसे पूछें कि तुमने कितनी रातें यहाँ बितायीं, तब कहना तीन रातें। और जब पूछें—"प्रथम रात्रि में तुमने क्या खाया ?" तब कहना "प्रथम रात्रि में मैंने तुम्हारी प्रजाओं को खाया।" जब पूछें—"दूसरी रात्रि में क्या खाया ?" तब कहना—"दूसरी रात्रि में मैंने तुम्हारे पशुओं को खाया।" जब पूछें-"तीसरी रात्रि में क्या खाया ?" तब कहना—"तीसरी रात्रि में मैंने तुम्हारे सुकृत को खाया।" इस प्रकार उत्तर देना। नचिकेता ने ऐसा ही किया—

इस प्रकार यमराज के यहाँ जाकर नचिकेता ने तीन रातें बिना भोजन किये बितायीं तथा यमराज के आने पर प्रश्नों का पूर्वोक्त रूप से उत्तर दिया। इस पर यमराज कहते हैं—"हे भगवन् ! वर माँगो।" नचिकेता वर माँगता है कि "मैं जीता हुआ ही पिता के पास जाऊँ।" फिर यम ने कहा—"दूसरा वर माँगो।" नचिकेता ने कहा—'उस उपाय के उपदेश दो जिससे मेरी इष्टा-पूर्ति का नाश न हो।" इस पर यमराज ने पूर्व के अनुवाकों में कथित नाचिकेत नामक अग्नि के चयन का उपदेश दिया। यमराज ने कहा-"तीसरा वर माँगो।" नचिकेता ने मृत्यु पर विजय माँगी। यमराज ने उसी नाचिकेत अग्नि का फिर उपदेश दिया। तदनन्तर नचिकेता ने मृत्यु को जीत लिया। इसी प्रकार जो कोई दूसरा व्यक्ति नाचिकेत अग्नि का चयन करता है और उसकी उपासना करता है वह मृत्यु को जीत लेता है। यमराज ने दो बार नाचिकेत अग्नि का उपदेश किया। इष्टापूर्त की रक्षा के लिए नाचिकेत अग्नि के चयन की प्रधानता तथा उपसना की गौणता मानी गयी तथा मृत्यु पर विजय प्राप्त करने

के लिए नाचिकेत अग्नि की उपासना की प्रधानता तथा चयन की गौणता मानी गयी। इस प्रकार दो बार उपदिष्ट नाचिकेत अग्नि के चयन तथा उपासनारूप वरों का विभाग हुआ।

तैत्तिरीय ब्राह्मण तथा कठोपनिषद् की कथाओं की तुलना

तैत्तिरीय ब्राह्मण के नाचिकेतोपाख्यान का परिष्कृत एवं विकसित रूप हम कठोपनिषद् में पाते हैं। कठोपनिषद् में अशरीरिणी वाणी को स्थान नहीं दिया गया है। नचिकेता ने तीन रातें बिना भोजन किये यमराज के भवन में, उनकी अनुपस्थिति में बितायीं। ब्राह्मण अतिथि अग्निरूप होकर घरों में प्रवेश करता है। अतः उसकी शान्ति के लिए अर्घ्य-पाद्य-रूप जल का दान करने के लिए यमराज से कहा गया है—

> वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणो गृहान्।
> तस्यैतां शान्तिं कुर्वन्ति हर वैवस्वतोदकम्॥
>
> —कठोपनिषद् १-१-७।

जिस प्रकार तैत्तिरीय ब्राह्मण में नचिकेता ने यमराज को उग्र रूप से उत्तर दिया—"मैंने तुम्हारी प्रजाओं, पशुओं और सत्कर्मों को खाया"—इसका कठोपनिषद् में अभाव मिलता है। कठोपनिषद् में परिष्कृत एवं संस्कृत रूप से यह श्लोक मिलता है—

> आशाप्रतीक्षे सङ्गतं सूनृतां च
> इष्टापूर्ते पुत्रपशूंश्च सर्वान्।
> एतद् वृङ्क्ते पुरुषस्याल्पमेधसो
> यस्यानश्नन् वसति ब्राह्मणो गृहे॥
>
> —कठोपनिषद् १-१-८।

कठोपनिषद् का नचिकेता ब्रह्मविद्या के आचार्य यमराज का एक अधिकारी शिष्य है जो विनय तथा दृढ़-सकल्प से युक्त है। कठोपनिषद् में तीन वरों के अतिरिक्त एक चौथा वर भी यमराज ने नचिकेता को दिया और कहा कि लोग स्वर्ग के साधनभूत इस अग्नि को तुम्हारे ही नाम से पुकारेंगे। इस प्रकार इस अग्नि का नाम नाचिकेताग्नि हुआ—

'एष तेऽग्निर्नचिकेतः स्वर्ग्यो यमवृणीथा द्वितीयेन वरेण।
एतमग्निं तवैव प्रवक्ष्यन्ति जनासस्तृतीयं वरं नचिकेतो वृणीष्व॥"

कठोपनिषद् १-१-१९।

विभिन्न प्रलोभनों के द्वारा नचिकेता की परीक्षा लेने के बाद कठोपनिषद् में नचिकेता को तीसरे वर के रूप में अजर-अमर आत्मा का उपदेश दिया गया है।

महाभारत में नचिकेतापाख्यान

महाभारत के अनुशासन पर्व के ७०वें अध्याय में भीष्म पितामह के मुख से गोदान करनेवाले राजा नृग का आख्यान वर्णित है। तृणाच्छन्न कूप में विशाल कृकलास—अर्थात् गिरगिट रूप में स्थित राजा नृग का उद्धार वासुदेव कृष्ण करते हैं। समुद्धृत नृग अपना पूर्वजन्म-वृत्तान्त कहते हैं। एक ब्राह्मण को दान में दी गयी गाय को गलती से दुबारा किसी दूसरे ब्राह्मण को फिर दान में देने से उन्हें जो पाप लगा, उस पाप के फल के रूप में उन्हें कृकलास की योनि मिली।

आगे ७१वें अध्याय में नचिकेतोपाख्यान का महाभारतीय रूप मिलता है। जहाँ कठोपनिषद् में वाजश्रवा के पुत्र वाजश्रवस् को नचिकेता का पिता कहा गया है वहाँ महाभारत में उद्दालकि को नाचिकेत का पिता कहा गया है। ध्यान देने की बात है कि कठोपनिषद् में सकारान्त नचिकेतस् तथा आकारान्त नाचिकेत नाम मिलते हैं, तथा महाभारत में केवल आकारान्त नाचिकेत। कठोपनिषद् में **"नाचिकेतमुपाख्यानम्"** (१-३-१६) यह प्रयोग "नचिकेतसा प्राप्तम्" इस अर्थ में भी हुआ है। कठोपनिषद् में वाजश्रवस् को गौतम, औद्दालकि और आरुणि—इन और नामों से पुकारा गया है। शङ्कराचार्य 'वाजश्रवस्', 'औद्दालकि' और 'आरुणि' इन शब्दों का निम्नलिखित रूप से अर्थ करते हैं—

(१) वाजश्रवसः। वाजमन्नं तद्दानादिनिमित्तं श्रवो यशो यस्य स वाजश्रवा रूढितो वा। तस्यापत्यं वाजश्रवसः।

(२) औद्दालकिः। उद्दालक एव औद्दालकिः।

(३) आरुणिः। अरुणस्यापत्यम् आरुणिः। द्व्यामुष्यायणो वा।

महाभारत के ७१वें अध्याय का नचिकेतोपाख्यान इस प्रकार से वर्णित है—युधिष्ठिर शरशय्या पर पड़े हुए भीष्म से गोदान के फल का वर्णन करने

के लिए प्रार्थना करते हैं। भीष्म गोदान के पुण्यफल का वर्णन करने के लिए पुरातन नाचिकेत इतिहास का वर्णन करते हैं—

"अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
ऋषेरुद्दालकेर्वाक्यं नाचिकेतस्य चोभयोः॥"

ऋषि उद्दालकि यज्ञ में दीक्षित होते हैं। वे नचिकेता से अपनी सेवा के लिए कहते हैं—

"ऋषिरुद्दालकिर्दीक्षामुपगम्य ततः सुतम्।
त्वं मामुपचरस्वेति नाचिकेतमभाषत॥"

नियम के समाप्त हो जाने पर ऋषि उद्दालकि नाचिकेत से कहते हैं कि आचमन करने में संलग्न तथा स्वाध्याय-रत होने के कारण मैं नदी के तीर पर इध्म, दर्भ तथा कलश आदि भूल आया हूँ। तुम जाकर इन वस्तुओं को नदी के तट पर से ले आओ। नाचिकेत ने नदी-तट पर जाकर देखा तो पाया कि ये सारी-की-सारी वस्तुएँ नदी के प्रवाह में बह गयी हैं। नाचिकेत लौटकर आता है तथा अपने पिता से कहता है कि हे पिता, मैंने उन वस्तुओं को नदी-तट पर नहीं देखा। भूख, प्यास तथा थकान से व्याकुल मुनि उद्दालकि ने पुत्र को शाप दे दिया कि तुम यम को देखो—

"समाप्ते नियमे तस्मिन् महर्षिः पुत्रमब्रवीत्।
उपस्पर्शनसक्तस्य स्वाध्यायाभिरतस्य च॥
इध्मा दर्भाः सुमनसः कलशश्चाति भोजनम्।
विस्मृतं मे तदादाय नदीतीरादिहाव्रज॥
गत्वानवाप्य तत्सर्वं नदीवेगसमाप्लुतम्।
न पश्यामि तदित्येवं पितरं सोऽब्रवीन्मुनिः॥
क्षुत्पिपासाश्रमाविष्टो मुनिरुद्दालकिस्तदा।
यमं पश्येति तं पुत्रमशपत् स महातपाः॥"

पिता के इस वाग्वज्र से अभिहत नाचिकेत, "पिता प्रसन्न हो जाँय" ऐसी प्रार्थना करते हुए ही निष्प्राण होकर पृथ्वी पर गिर पड़ता है—

"तथा स पित्राभिहतो वाग्वज्रेण कृताञ्जलिः।
प्रसीदेति ब्रुवन्नेव गतसत्त्वोऽपतद् भुवि।"

जब पिता उद्दालकि नाचिकेत को पृथ्वी पर गिरा हुआ देखता है तो दुःख से मूर्च्छित होकर, "मैंने क्या कर डाला", यह कहकर पृथ्वी पर गिर पड़ता है—

"नाचिकेतं पिता दृष्ट्वा पतितं दुःखमूर्च्छितः ।
किं मया कृतमित्युक्त्वा निपपात महीतले ॥"

पुत्र के शोक से सन्तप्त मुनि उद्दालकि ने दिवस के शेष तथा रात्रि को बिताया—

तस्य दुःखपरीतस्य स्वं पुत्रमनुशोचतः ।
व्यतीतं तदहःशेषं सा चोग्रा तत्र शर्वरी ॥

नाचिकेत यम के यहाँ से वापस आकर शयन पर उसी प्रकार स्पन्दित होता है जैसे वृष्टि से शस्य ।

यम के यहाँ से वापस आये हुए पुत्र से उद्दालकि ने पूछा कि पुत्र, क्या तुमने अपने कर्म से शुभ लोकों को जीत लिया ? तुम्हारा शरीर दिव्य हो गया है। नाचिकेत उत्तर देता है कि आपकी आज्ञा से मैं वैवस्वत यमराज की सभा में गया । यम ने आसन देकर नाचिकेत की यथोचित पूजा की । नाचिकेत ने कहा, 'हे यम ! अब जो उचित हो उसे आप करें ।" यम ने कहा, "हे सौम्य ! मृत नहीं हो । तुम्हारे पिता ने तुमसे कहा, 'यम को देखो ।' तुम्हारे पिता का वचन मिथ्या नहीं हो सकता । तुमने मुझे देख लिया । अब तुम्हारे पिता तुम्हारे लिए शोक कर रहे हैं । तुम जो चाहो वर माँग लो ।"

कुर्वन् भवच्छासनमाशु यातो ह्यहं विशालां रुचिरप्रभावाम् ।
वैवस्वतीं प्राप्य सभामपश्यं सहस्रशो योजनहेमभासम् ॥
दृष्ट्वैव मामभिमुखमापतन्तं देहीति स ह्यासनमादिदेश ।
वैवस्वतोऽर्घ्यादिभिरर्हणैश्च भवत्कृते पूजयामास मां सः ॥
ततस्त्वहं तं शनकैरवोचं वृतः सदस्यैरभिपूज्यमानः ।
प्राप्तोऽस्मि ते विषयं धर्मराज लोकानर्हो यानहं तान् विधत्स्व ॥
यमोऽब्रवीन्मां न मृतोऽसि सौम्य यमं पश्येत्याह स त्वां तपस्वी ।
पिता प्रदीप्ताग्निसमानतेजा न तच्छक्यमनृतं विप्र कर्तुम् ॥
दृष्टस्तेऽहं प्रतिगच्छस्व तात शोचत्यसौ तव देहस्य कर्ता ।
ददानि किं चापि मनःप्रणीतं प्रियातिथेस्तव कामान् वृणीष्व ॥

तेनैवमुक्तस्तमहं प्रत्यवोचं प्राप्तोऽस्मि ते विषयं दुर्निवर्त्यम्।
इच्छाम्यहं पुण्यकृतां समृद्धान् लोकान् द्रष्टुं यदि तेऽहं वरार्हः ॥
यानं समारोप्य तु मां स देवो वाहैर्युक्तं सुप्रभं भानुमत् तत्।
सन्दर्शयामास तदात्मलोकान् सर्वांस्तथा पुण्यकृतां द्विजेन्द्र ॥

इस प्रकार जब नाचिकेत ने पुण्य कर्म करने वालों के लोकों का दर्शन करने की इच्छा व्यक्त की, तब यमराज ने उसे रथ पर बैठाकर पुण्यात्माओं के लोकों का दर्शन कराया। इसके बाद विस्तारपूर्वक इन लोकों का वर्णन मिलता है। वहाँ दूध की नदियाँ बहती हैं। जो लोग गोदान करते हैं, वे इस दूध की नदियोंवाले लोक को प्राप्त होते हैं—

यमोऽब्रवीद् विद्धि भोज्यास्त्वमेता ये दातारः साधवो गोरसानाम्।
अन्ये लोकाः शाश्वता वीतशोकैः समाकीर्णा गोप्रदाने रतानाम् ॥

जो स्वाध्यायवान्, तपस्वी ब्राह्मण तीन रात भूमि पर उपवास करके सर्वसम्पन्न गाय का दान करता है, वह उतने ही वर्षों के लिए स्वर्ग लोकों को प्राप्त करता है, जितने रोएँ गाय के होते हैं। जो ब्राह्मण दान्त, धुर्य, बलवान्, तरुण, कुलानुजीव्य एवं विशाल बैल का दान ब्राह्मण को करता है, वहकुबेर के लोकों का भोग करता है—

स्वाध्यायवान् योऽतिमात्रं तपस्वी वैतानस्थो ब्राह्मणः पात्रमासाम्।
कृच्छ्रोत्सृष्टाः पोषणाभ्यागताश्च द्वारैरेतैर्गोविशेषाः प्रशस्ताः ॥
तिस्रो रात्र्यस्त्वद्भिरुपोष्य भूमौ तृप्ता गावस्तर्पितेभ्यः प्रदेयाः।
वत्सैः प्रीताः सुप्रजाः सोपचारास्त्र्यहं दत्त्वा गोरसैर्वर्तितव्यम् ॥
दत्त्वा धेनुं सुव्रतां कांस्यदोहां कल्याणवत्सामपलायिनीं च।
यावन्ति रोमाणि भवन्ति तस्यास्तावद् वर्षाण्यश्नुते स्वर्गलोकम् ॥
तथानड्वाहं ब्राह्मणेभ्यः प्रदाय दान्तं धुर्यं बलवन्तं युवानम्।
कुलानुजीव्यं वीर्यवन्तं बृहन्तं भुङ्क्ते लोकान् सम्मितान् धेनुदस्य ॥

कठोपनिषद् में विश्वजित् यज्ञ में वाजश्रवस् ने जिन गायों का दान किया उनका वर्णन इस प्रकार है—

पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रियाः।
अनन्दा नाम ते लोकास्तान् स गच्छति ता ददत् ॥

—कठोपनिषद् १-१-३।

कठोपनिषद् के आख्यान का एक वैशिष्ट्य यह भी है कि बीच-बीच में उसकी पूर्ति पाठक को करनी पड़ती है। जब नचिकेता ने लगातार तीन बार अपने पिता से कहा, "तात आप मुझे किसे देंगे?" तब पिता ने कहा, "मैं तुझे मृत्यु को देता हूँ।" कठोपनिषद् के उपाख्यान में पिता का क्रुद्ध होना सकारण प्रतीत होता है, जब कि महाभारत के आख्यान में पिता का क्रुद्ध होना उचित नहीं मालूम होता। कठोपनिषद् में शाप देने के कुछ समय बाद नचिकेता यम के यहाँ जाता है, महाभारत में तुरन्त निष्प्राण होकर गिर पड़ता है। कठोपनिषद् की कथा के अनुसार नचिकेता ने यमराज की अनुपस्थिति में तीन रात्रि तक उपवास करके निवास किया। फलतः प्रत्येक रात्रि के लिए एक-एक वर यमराज ने नचिकेता को दिया—

तिस्रो रात्रीर्यदवात्सीर्गृहे मेऽनश्नन् ब्रह्मन्नतिथिर्नमस्यः।
नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन्स्वस्ति मेऽस्तु तस्मात् प्रति त्रीन् वरान् वृणीष्व ॥

—कठोपनिषद् १-१-९।

महाभारत की कथा में कहा है कि जो तीन रात उपवास करके गोदान करता है, वह पुण्यलोकों को प्राप्त करता है।

कठोपनिषद् में नचिकेता ने पितृपरितोष, स्वर्ग के साधनभूत अग्नि का ज्ञान तथा ब्रह्म का ज्ञान माँगा। यमराज ने प्रथम दो वर बिना परीक्षा लिये ही दे दिये, किन्तु तीसरा वर नचिकेता की परीक्षा लेने के बाद ही दिया। महाभारत की कथा में नचिकेता ब्रह्मज्ञानी तथा अमर नहीं होता—

इत्युक्तोऽहं धर्मराजं द्विजर्षे
धर्मात्मानं शिरसाभिप्रणम्य।
अनुज्ञातस्तेन वैवस्वतेन
प्रत्यागमं भगवत्पादमूलम् ॥

दूसरी ओर कठोपनिषद् में नचिकेता ब्रह्मज्ञ तथा अमर हो जाता है।

अथ कृष्णयजुर्वेदगतकठशाखोक्ता कठोपनिषद्

शान्तिपाठ

ॐ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै । तेजस्वि नावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

अन्वय—[ईश्वरः] नौ सह अवतु । नौ सह भुनक्तु । [आवाम्] सह वीर्यं करवावहै । नौ अधीतम् तेजस्वि अस्तु । [आवाम्] मा विद्विषावहै ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

हिन्दी—[ईश्वर] हम [गुरु और शिष्य] दोनों की एकसाथ रक्षा करें । हम दोनों का एकसाथ पालन करें । हम दोनों एक साथ शक्ति प्राप्त करें । हम दोनों का अध्ययन तेजस्वी हो । हम दोनों द्वेष न करें ।

[आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक इन] तीनों दुःखों का शमन हो ।

शाङ्करभाष्य—ॐ नमो भगवते वैवस्वताय मृत्यवे ब्रह्मविद्याचार्याय नचिकेतसे च । अथ काठकोपनिषद्वल्लीनां सुखार्थप्रबोधनार्थमल्पग्रन्था वृत्तिरारभ्यते ।

सदेर्धातोर्विशरणगत्यवसादनार्थस्योपनिपूर्वस्य क्विप्प्रत्ययान्तस्य रूपमुपनिषदिति उपनिषच्छब्देन च व्याचिख्यासितग्रन्थप्रतिपाद्यवेद्यवस्तुविषया विद्योच्यते । केन पुनरर्थयोगेनोपनिषच्छब्देन विद्योच्यत इत्युच्यते । ये मुमुक्षवो दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णाः सन्त उपनिषच्छब्दवाच्यां वक्ष्यमाणलक्षणां विद्यामुपसद्योपगम्य तन्निष्ठतया निश्चयेन शीलयन्ति तेषामविद्यादेः संसारबीजस्य विशरणाद्धिसनाद्विनाशनादित्यनेनार्थयोगेन विद्योपनिषदित्युच्यते । तथा च वक्ष्यति—"निचाय्य तं मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ।" (क० उ० १–३–१५) इति । पूर्वोक्तविशेषान्मुमुक्षून्वा परं ब्रह्म गमयतीति ब्रह्मगमयितृत्वेन योगाद्ब्रह्मविद्योपनिषद् तथा च वक्ष्यति—"ब्रह्म प्राप्तो विरजोऽभूद्विमृत्युः" (क० उ० २–३–१८) इति लोकादिर्ब्रह्मजज्ञो योऽग्निस्तद्विषयाया विद्याया द्वितीयेन वरेण प्रार्थ्यमानायाः

स्वर्गलोकफलप्राप्तिहेतुत्वेन गर्भवासजन्मजराद्युपद्रववृन्दस्य लोकान्तरे पौनःपुन्येन प्रवृत्तस्यावसादयितृत्वेन शैथिल्यापादाने धात्वर्थयोगादग्निविद्याप्युपनिषदित्युच्यते। तथा च वक्ष्यति—"स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्ते" (क० उ० १-१-१३) इत्यादि। ननु चोपनिषच्छब्देन ध्येतारो ग्रन्थमप्यभिलषन्ति। उपनिषदमधीमहेऽध्यापयाम इति च। एवं नैष दोषोऽविद्यादिसंसारहेतुविशरणादेः सदिधात्वर्थस्य ग्रन्थमात्रेऽसम्भवाद्विद्यायां च सम्भवात्। ग्रन्थस्यापि तादर्थ्येन तच्छब्दत्वोपपत्तेः आयुर्वै घृतमित्यादिवत्। तस्माद्विद्यायां मुख्यया वृत्त्योपनिषच्छब्दो वर्तते ग्रन्थे तु भक्त्येति। एवमुपनिषन्निर्वचनेनैव विशिष्टोऽधिकारो विद्यायामुक्तः। विषयश्च विशिष्ट उक्तो विद्यायाः परं ब्रह्म प्रत्यगात्मभूतम्। प्रयोजनं चास्या उपनिषद आत्यन्तिकी संसारनिवृत्तिर्ब्रह्मप्राप्तिलक्षणा सम्बन्धश्चैवंभूतप्रयोजनेनोक्तः। अतो यथोक्ताधिकारविषयिप्रयोजनसम्बन्धाया विद्यायाः करतलन्यस्तामलकवत् प्रकाशकत्वेन विशिष्टाधिकारिविषयप्रयोजनसम्बन्धा एता वल्ल्यो भवन्तीति। अतस्ता यथाप्रतिमानं व्याचक्ष्महे।

●

प्रथम अध्याय

प्रथमा वल्ली

ॐ उशन्ह वै वाजश्रवसः सर्ववेदसं ददौ।
तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस॥ १॥

अन्वय—ह[1] वै उशन्[2] वाजश्रवसः[3] सर्ववेदसं[4] ददौ[5]। तस्य नचिकेता[6] नाम पुत्र[7] आस ह।

शा० भा०—तत्राख्यायिका विद्यास्तुत्यर्था। उशन्कामयमानः। ह वा इति वृत्तार्थस्मरणार्थौ निपातौ। वाजमन्नं तद्दानादिनिमित्तं श्रवो यशो यस्य स वाजश्रवा रूढितो वा। तस्यापत्यं वाजश्रवसः किल विश्वजिता सर्वमेधेनेजे तत्फलं काम-

यमानः। स तस्मिन् क्रतौ सर्ववेदसं सर्वस्वं धनं दत्तवान्। तस्य यजमानस्य ह नचिकेता नाम पुत्रः किल आस बभूव ॥ १ ॥

हिन्दी—कहते हैं (फल की) कामना करते हुए वाजश्रवस् ने (सर्वमेध यज्ञ में) सब धन दे दिया अर्थात् सर्ववेदस् यज्ञ किया। प्रसिद्ध है कि उसके नचिकेता नाम का पुत्र था ॥ १ ॥

१. ह। वै। ये दोनों ही निपात हैं। इनका प्रयोग अतीत काल की घटना का स्मरण दिलाने के लिए हुआ है।

२. (क) उशन्। स्पष्ट रूप से उशन् नचिकेता के पिता का नाम है, क्योंकि वाजश्रवस् शब्द का अर्थ है, "वाजश्रवा का पुत्र" अतः 'वाजश्रवस्' नचिकेता के पिता का मूल नाम नहीं है। यह मत गेल्डनर, कार्पेण्टियर आदि का है। जैसा कि ओल्डनबर्ग कहते हैं—

"उशन्त देस् वाजश्रवस् जोन"........"वाजश्रवस् के पुत्र उशन्त" बुद्ध, जाइन लेबेन, जाइने लेयरे, जाइने गेमाइण्डे, पृष्ठ ५९।

(ख) शङ्कराचार्य ने उशन् का अर्थ 'कामयमानः' किया है।

उशन् = वश् + शतृ।

३. वाजश्रवसः। वाज√वज् > उर्ज, उज्, ओजस्। श्रूयते इति श्रवः कीर्तिः शब्दो वा।

वाजम् अन्नं तद्दानादिनिमित्तं श्रवो यशो यस्य स वाजश्रवा रूढितो वा। वाजश्रवसोऽपत्यं वाजश्रवसः। (अण् प्रत्यय) —शंकराचार्य

वाज शब्द वैदिक साहित्य में अनेक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। यथा—

(अ) शक्ति।

(ब) गति (विशेषतः घोड़ों की गति, जिससे वे वाजि कहलाये)।

(स) युद्ध। हरिर्वाजाय मृग्यते। ऋग्वेद ९. ३. ३।

(द) युद्ध में उपलब्ध धन। इन्द्र को "वाजानां पतिः" (ऋग्वेद ६. ४५. १०) कहा गया है।

(य) धन।

(र) अन्न। (निघण्टु २.७)। यज्ञान्न और घृत।

त्वां शश्वन्त उपयन्ति वाजाः—ऋग्वेद ७. १. ३।

(ल) ओषधयः खलु वै वाजः ।—तैत्तिरीय ब्राह्मण १. ३. ७१ ।

(व) अन्नं वै वाजः ।—शतपथ ब्राह्मण ९. ३ ।

४. सर्ववेदसम् । "वेदस्" = धन । "सर्ववेदसं वा एतत्सत्रम् ।।"

—महानारायणोपनिषद् २५. १.।

वस्तुतः "सर्ववेदसं ददौ" का अर्थ है "सर्वमेध यज्ञ किया", न कि सारा धन दे दिया। यद्यपि सर्ववेदसम् का शाब्दिक अर्थ "सब धन" होता है तथापि 'सर्ववेदस्' उस सर्वमेध या विश्वजित् यज्ञ का एक नाम है, जिसमें यजमान अपना सारा धन दान में दे देता है। वाजश्रवस् अपना सारा धन दान में नहीं देते। वे अधम गायों का दान करते हैं। अतएव "सर्ववेदसं ददौ" का अर्थ "सर्ववेदस् यज्ञ किया" ही ठीक है। जैसे "तपस्या की" इसके लिए संस्कृत में प्रयोग होता है—"तपस्तपति", उसी प्रकार यहाँ "सर्ववेदसं ददौ" का प्रयोग है, जिसका अर्थ है सर्ववेदस् यज्ञ किया।

५. ददौ। लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

६. नचिकेता। नचिकेता शब्द की उत्पत्ति "चिती किती सञ्ज्ञाने" धातु से मानी जाती है। इसका अर्थ हुआ—"जो नहीं जानता" अर्थात् जो जिज्ञासु है।

७. पुत्र। पू + क्त्र ह्रस्वश्च। पुतो नरकविशेपात् त्रायते इति पुत्रः।

> पुन्नाम्नोनरकाद्यस्मात्पितरं त्रायते सुतः।
> तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः.... ....।।—मनु

तँ ह कुमारँ सन्तं दक्षिणासु नीयमानासु श्रद्धा विवेश।
सोऽमन्यत ।। २ ।।

अन्वय—कुमारं[1] सन्तं तं दक्षिणासु नीयमानासु श्रद्धा विवेश ह। सोऽमन्यत ।। २ ।।

शा० भा०—तं ह नचिकेतसं कुमारं प्रथमवयसं सन्तमप्राप्तजननशक्तिं बालमेव श्रद्धास्तिक्यबुद्धिः पितुर्हितकामप्रयुक्ता। आविवेश प्राविष्टवती। कस्मिन् काल इत्याह—ऋत्विग्भ्यः सदस्येभ्यश्च दक्षिणासु नीयमानासु विभागेनोपनीयमानासु दक्षिणार्थासु गोषु स आविष्टश्रद्धो नचिकेता अमन्यत ।। २ ।।

हिन्दी—दक्षिणाएँ (दक्षिणा रूप गायें) जब ले जायी जा रही थीं, तब उसमें श्रद्धा (आस्तिक्य बुद्धि) ने प्रवेश किया। उसने सोचा ॥ २ ॥

१. ऋग्वेद-अनुक्रमणिका में अग्नि के एक पुत्र का नाम है, जो कुछ वैदिक सूक्तों का ऋषि है।

कथामित्युच्यते—

पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रियाः।
अनन्दा नाम ते लोकास्तान्स गच्छति ता ददत् ॥ ३ ॥

अन्वय—(याः) पीतोदकाः जग्धतृणाः दुग्धदोहाः निरिन्द्रियाः ताः (गाः) ददत् (यजमानः) ये अनन्दाः नाम लोकाः तान् सः गच्छति ॥ ३ ॥

शा० भा०—दक्षिणार्थो गावो विशेष्यन्ते। पीतमुदकं याभिस्ताः पीतोदकाः। जग्धं भक्षितं तृणं याभिस्ता जग्धतृणाः। दुग्धो दोहः क्षीराख्यो यासां ता दुग्धदोहाः। निरिन्द्रिया अप्रजननसमर्था जीर्णा निष्फला गाव इत्यर्थः। यास्ता एवम्भूता गा ऋत्विग्भ्यो दक्षिणाबुद्धया ददत्प्रयच्छन् अनन्दा अनानन्दा असुखा नामेत्येतद्ये ते लोकास्तान्स यजमानो गच्छति ॥ ३ ॥

हिन्दी—(जिन्होंने) जल पी लिया है, घास खा ली है; दूध दुह लिया गया है; जो प्रजनन-समर्थ नहीं हैं—उन गायों का दान करता हुआ (यजमान जो) आनन्द—आनन्द-रहित लोक [हैं] उनमें जाता है ॥ ३ ॥

१. पीतोदकाः—पीतम् = पा + कर्मणि क्त। उदकम् = उन्दी क्लेदने + क्वुन् उणादिप्रत्यय २. ३९। पीतम् उदकं याभिस्ताः पीतोदकाः बहुव्रीहि समास।

२. जग्धतृणाः—जग्ध = अद् + कर्मणि क्त। तृण् = तृह् + नक् हलोपश्च उणादि ५.८ जग्ध तृणं याभिस्ता जग्धतृणाः बहुव्रीहि समास।

३. दुग्धदोहाः—दुग्ध = दुह + क्त। दुह्यते इति दोहः। दुह् + घञ्। दुग्धो दोहः पयः यासां ता दुग्धदोहाः। बहुव्रीहि समास।

४. अनन्दाः—नन्दयन्तीति नञ् (अ) + नन्द, नन्दाः, न नन्दाः अनन्दाः।

अनन्दा नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥

—बृहदारण्यकोपनिषद् ४. ४. ११।

स होवाच पितरं तत कस्मै मां दास्यसीति।
द्वितीयं तृतीयं तँ होवाच मृत्यवे त्वां ददामीति ॥ ४ ॥

अन्वय--स ह पितरम् उवाच तत कस्मै मां दास्यसि इति। [सः] द्वितीयं तृतीयं [तम् उवाच]। मृत्यवे त्वां ददामि इति [पिता] तम् उवाच ह ॥ ४ ॥

शा० भा०--तदेवं क्रतुवसम्पत्तिनिमित्तं पितुरनिष्टं फलं मया पुत्रेण सता निवारणीयमात्मप्रदानेनापि क्रतुसम्पत्तिं कृत्वेत्येवं मत्वा पितरम् उपगम्य स होवाच पितरं हे तत तात कस्मै ऋत्विग्विशेषाय दक्षिणार्थं मां दास्यसि प्रयच्छसीत्येतत्। एवमुक्तेन पित्रोपेक्ष्यमाणोऽपि द्वितीयं तृतीयमप्युवाच कस्मै मां दास्यसि कस्मै मां दास्यसीति। नायं कुमारस्वभाव इति क्रुद्धः सन् पिता तं ह पुत्रं किलोवाच मृत्यवे वैवस्वताय त्वा त्वां ददामीति[1] ॥ ४ ॥

हिन्दी--[यह जानते हुए कि उसके पिता ने पुत्रसहित सर्वस्व दान में देने की प्रतिज्ञा कर ली है] वह पिता से बोला--"हे तात! मुझे किसे देंगे।" उसने [इस वाक्य को] दुबारा [और फिर] तिबारा कहा। [पिता ने] उससे [क्रोधपूर्वक] कहा--"मैं तुझे मृत्यु को देता हूँ" ॥ ४ ॥

१--ददामि। कुछ पाण्डुलिपियों में "दास्यामि" यह पाठान्तर मिलता है।

स एवमुक्तः पुत्र एकान्ते परिदेवयाञ्चकार। कथम्? इत्युच्यते—

बहूनामेमि प्रथमो बहूनामेमि मध्यमः।
किँस्विद्यमस्य कर्तव्यं यन्मयाद्य करिष्यति ॥ ५ ॥

अन्वय—बहूनां प्रथमः[1] एमि; बहूनां मध्यमः[2] एमि। यमस्य [तत्] किंस्वित् कर्तव्यं यत् मया अद्य करिष्यति ॥ ५ ॥

शा० भा०—बहूनां शिष्याणां पुत्राणां वैमि गच्छामि प्रथमः सन्मुख्यया शिष्यादिवृत्त्येत्यर्थः। मध्यमानां च बहूनां मध्यमो मध्यमयैव वृत्त्यैमि। नाधमया कदाचिदपि। तमेवं विशिष्टगुणमपि पुत्रं मां मृत्यवे त्वां ददामीत्युक्तवान् पिता। स किंस्विद्यमस्य कर्तव्यं प्रयोजनं मया प्रत्तेन करिष्यति यत् कर्तव्यमद्य? नूनं प्रयोजनम् अनपेक्ष्यैव क्रोधवशादुक्तवान् पिता। तथापि तत् पितुर्वचो मृषा मा भूदित्येवं मत्वा परिदेवनापूर्वकमाह पितरं शोकाविष्टं किं मयोक्तमिति ॥ ५ ॥

हिन्दी—मैं अनेक [शिष्यों या पुत्रों में] प्रथम (मुख्य वृत्ति से) चलता हूँ, अनेक में मध्यम (वृत्ति से) चलता हूँ। यम का क्या कार्य है ? जो [पिता] मेरे द्वारा आज करेंगे ॥ ५ ॥

मैक्समूलर का अनुवाद—[पुत्र बोला—] [जिन्हें अभी मरना है ऐसे] बहुत-से लोगों में मैं प्रथम [होकर] जा रहा हूँ; [जो मर रहे हैं, ऐसे] बहुत-से लोगों के मध्य में [अर्थात् उनमें मध्यम होकर] मैं जा रहा हूँ। यम का क्या कार्य है जो आज मुझसे यमराज करेंगे ॥ ५ ॥

—सैक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट, भाग १५, कठोपनिषद्, पृष्ठ २।

१. **प्रथमः**—प्रथ् + अमच् । उणादिसूत्र ५-६८ ।

२. **मध्यमः**—मध्ये भवः मध्यमः । मध्य + म । "मध्यान्मः" ४. ३. ८. ।

३. **यमः**—यमयति नियमयतीति यमः तस्य यमस्य । यम् + अच्‌ङस् (स्य) ।

अनुपश्च यथा पूर्वे प्रतिपश्य तथापरे।
सस्यमिव[1]मर्त्यः[2]पच्यते सस्यमिवाजायते पुनः ॥ ६ ॥

अन्वय—अनुपश्य यथा पूर्वे [वृत्ताः] तथा प्रतिपश्य (यथा) अपरे (वृत्ताः) । मर्त्यः सस्यम् इव पच्यते पुनः सस्यम् इव आजायते ॥ ६ ॥

शा० भा०—अनुपश्यालोचय निभालय । अनुक्रमेण यथा येन प्रकारेण वृत्ताः पूर्वे अतिक्रान्ताः पितृपितामहादयस्तव । तान् दृष्ट्वा च तेषां वृत्तमास्थातुमर्हसि । वर्तमानाश्चापरे साधवो यथा वर्तन्ते तांश्च प्रतिपश्यालोचय न च तेषु मृषाकरणं वृत्त वर्तमान वास्ति । तद्विपरीतमसतां च वृत्त मृषाकरणम् । न च मृषा कृत्वा कश्चिदजरामरो भवति । यतः सस्यमिव मर्त्यो मनुष्यः पच्यते जीर्णो म्रियते । मृत्वा च सस्यमिव आजायत आविर्भवति । पुनरेवमनित्ये जीवलोके किं मृषाकरणेन । पालय आत्मनः सत्यम् । प्रेषय मां यमाय इत्यभिप्रायः ॥ ६ ॥

हिन्दी—जिस प्रकार प्राचीन लोग (आचरण करते) थे उस पर दृष्टि डालो, और (जिस प्रकार) बाद के (वर्तमानकालिक) लोग (आचरण करते) हैं, उसे देखो। मरणधर्मा मनुष्य फसल की तरह पकता (वृद्ध होकर मरता) है; फिर फसल की तरह उत्पन्न होता है ॥ ६ ॥

१. **सस्यम्**--सम् + यत् उणादिसूत्र ४-११९ ।

२. मर्त्यः—म्रियतेऽत्रेति मर्तः भूलोकः। मर्त √मृ। मर्ते भवः मर्त्यः। मर्त + यत्।

स एवमुक्तः पितात्मनः सत्यतायै प्रेषयामास। स च यमभवनं गत्वा तिस्रो रात्रीः उवास यमे प्रोषिते। प्रोष्यागतं यमममात्या भार्या वा ऊचुर्बोधयन्तः—

वैश्वानरः[1] प्रविशत्यतिथि[2] ब्राह्मणो[3] गृहान्[4]।
तस्यैतां शान्ति[5] कुर्वन्ति हर वैवस्वतो[6] दकम् ॥ ७ ॥

अन्वय—ब्राह्मणोऽतिथिः वैश्वानरः (सन्) गृहान् प्रविशति। तस्य एतां शान्ति कुर्वन्ति। हे वैवस्वत ! उदकं हर ॥ ७ ॥

शा० भा०—वैश्वानरोऽग्निरेव साक्षात् प्रविशत्यतिथिः सन् ब्राह्मणो गृहान् दहन्निव। तस्य दाहं शमयन्त इवाग्नेरेतां पाद्यासनादिदानलक्षणां शान्ति कुर्वन्ति सन्तोऽतिथेर्यतोऽतो हराहर हे वैवस्वत ! उदकं नाचिकेतसे पाद्यार्थम्। यतश्चाकरणे प्रत्यवायः श्रूयते ॥ ७ ॥

हिन्दी—ब्राह्मण अतिथि (होकर) अग्नि (ही) घरों में प्रवेश करता है। (सज्जन लोग) उस (ब्राह्मण-अतिथिरूप अग्नि को यह अर्घ्यपाद्यजल-दानादिरूप) शमन करते हैं। (अतः) हे वैवस्वत ! शान्ति के लिए जल लाओ ॥ ७ ॥

१—"वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणो गृहम्"—वासिष्ठधर्मशास्त्र ११–१३।

वैश्वानरः—विश्वश्चासौ नरश्च विश्वानरः। "नरे सञ्ज्ञायाम्" (पाणिनि ६. ३. १२८) इति दीर्घः। विश्वानर एव वैश्वानरः। स्वार्थे अण्प्रत्ययः। यद्वा विश्वेषां नराणामयं कुक्षिस्थत्वादिति वैश्वानरः। अण् पूर्वदीर्घः।

वैश्वानर शब्द का अर्थ है "सभी मनुष्यों से सम्बद्ध", "सर्वव्यापी"। यह शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। कुछ निम्नलिखित हैं :—

(अ) अग्निविशेष—

"एतं त्वा वृणतेऽग्नि होत्राय सह पित्रा वैश्वानरेण।"

—आश्वलायन श्रौतसूत्र १-३-२३।

(ब) सूर्य; सूर्यप्रकाश—

"वैश्वानरो रश्मिभिः वः पुनातु"

—अथर्ववेद ६. ६२।

"जोतिर्वैश्वानरं बृहत्"

—ऋग्वेद ९-६१-१६।

(स) "सभी मनुष्यों से सम्बद्ध", "विश्वव्यापी"—

"ये देवास इह स्थन विश्वे वैश्वानरः उत।"

—ऋग्वेद ८-३०-४०।

(द) अग्नि—

"अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥"

—श्रीमद्भगवद्गीता १५-१४।

"वैश्वानरोऽप्यन्यत्राप्युक्तं, अयमग्निर्वैश्वानरः।"

—मैत्रायण्युपनिषद् २-८।

"व्यात्तमग्निर्वैश्वानरः"

—बृहदारण्यकोपनिषद् १-१-१।

"अयमग्निर्वैश्वानरो योऽयमन्तःपुरुषे"

—मैत्रायण्युपनिषद् २-६।

"विश्वोऽसि वैश्वानरोऽसि।"

—मैत्रायण्युपनिषद् ६-९।

"स एष वैश्वानरो विश्वरूपः"

—प्रश्नोपनिषद् १-७।

२. अतिथिः—अतति गच्छति न तिष्ठतीति। अत्+इथिन् उणादि ४-२। यद्वा अविद्यमाना तिथिर्यस्य सोऽतिथिः। जिसकी कोई तिथि नहीं अर्थात् जो किसी भी दिन घर में आ सकता है।

एकरात्रं तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः ।
अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥

—मनुस्मृति ३-१०२ ।

यस्य न ज्ञायते नाम न च गोत्रं न च स्थितिः ।
अकस्माद् गृहमायातः सोऽतिथिः प्रोच्यते बुधैः ॥

३. ब्राह्मणः—ब्रह्मन् + अण् ।

"चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ।"

—ऋग्वेद १-१६४-४५ ।

"ब्राह्मणा व्रतचारिणः ।"

—ऋग्वेद ७-१०३-१ ।

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा ।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥

—मनुस्मृति १-८८ ।

४. **गृहान्**—गृह्यते धर्माचरणाय इति गृहम् । ग्रह + कः । "गेहे कः" ३. १. १४४ । यद्वा गृहणाति धान्यादिकं जीवनार्थं यस्मिन्निति ।

५. **शान्तिम्**—शम् + क्तिन् = शान्तिः । ताम् ।

६. **वैवस्वत**—विवस्वतोऽपत्यं वैवस्वतः । अण् ।

"वैवस्वतं सङ्गमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य ॥"

—ऋग्वेद १०-१४-१ ।

७. **उदकम्**—उन्दी क्लेदने + ण्वुल् नि नलोपश्च उणादि २-३९ ।

आशा[1] प्रतीक्षे[2] सङ्ग[3]तं[?] सूनृतां[4] च
इष्टापूर्ते[5] पुत्र[6]पशूँश्च सर्वान् ।
एतद् वृङ्क्ते पुरुषस्याल्पमेधसो
यस्यानश्नन्[7] वसति ब्राह्मणो गृहे ॥ ८ ॥

अन्वय—अनश्नन् ब्राह्मणः यस्य गृहे वसति [तस्य] अल्पमेधसः पुरुषस्य आशाप्रतीक्षे सङ्गतं सूनृतां च इष्टापूर्ते सर्वान् पुत्रपशूंश्च [इति] एतत् । [सर्वं] वृङ्क्ते ॥ ८ ॥

शा० भा०—आशाप्रतीक्षेऽनिर्ज्ञातप्राप्येष्टार्थप्रार्थना आशा; निर्ज्ञातप्राप्यार्थ-प्रतीक्षणं प्रतीक्षा; ते आशाप्रतीक्षे, सङ्गतं तत्संयोगजं फलम्, सूनृतां च सूनृता हि प्रिया वाक् तन्निमित्तं च, इष्टापूर्ते इष्टं यागजं पूर्तमारामादिक्रियाजं फलम्, पुत्र-पशूंश्च पुत्रांश्च पशूंश्च सर्वानेतदेतत्सर्वं यथोक्तं वृङ्क्ते आवर्जयति विनाशयतीत्येतत्-पुरुषस्याल्पमेधसोऽल्पप्रज्ञस्य—यस्यानश्नन्नभुञ्जानो ब्राह्मणो गृहे वसति । तस्मादनु-पेक्षणीयः सर्वावस्थास्वप्यतिथिरित्यर्थः ॥ ८ ॥

हिन्दी—बिना भोजन किये हुए ब्राह्मण जिसके गृह में निवास करता है, उस अल्पबुद्धि मनुष्य की ज्ञात तथा अज्ञात वस्तुओं की प्राप्ति की इच्छाएँ, उनके संयोग से मिलनेवाले फल; प्रिय वाणी (तथा प्रिय वाणी से उत्पन्न फल) इष्ट (याग आदि) तथा पूर्त (आरामादि) से उत्पन्न होनेवाले फल और समस्त पुत्र तथा पशु इन सबको वह नष्ट कर देता है ॥ ८ ॥

१. आशा—आ समन्तात् अश्नुते व्याप्नोति इति आशा । आङ्+अश्+अच्+टाप् ।

२. प्रतीक्षा—प्रतीक्षणं प्रतीक्षा प्रति+ईक्ष्+अङ्+टाप् ।

३. सङ्गतम्—सम्+गम्+क्त (भावे) ।

४. सूनृता—सु+नृत+क+टाप् ।

इष्टापूर्ते—इष्टं च पूर्तं च द्वयोः समाहारः इष्टापूर्ते । पूर्वपददीर्घत्वम् ।

इष्टम् = इष् इच्छायाम् + क्त (कर्मणि) ।

पूर्तम् = पॄ (पालने) + क्त (भावे) । यद्वा पूर्+क्त ।

(क) इष्टम् :—

अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चैव पालनम् ।
आतिथ्यं वैश्वदेवश्च इष्टमित्यभिधीयते ॥
एकाग्निकर्महवनं त्रेतायां यच्च हूयते ।
अन्तर्वेद्यां च यद्दानमिष्टं तदभिधीयते ॥

(ख) पूर्तम् :—

वापीकूपतडागादिदेवतायतनानि च ।
अन्नप्रदानमारामाः पूर्तमित्यभिधीयते ॥ —मनुस्मृति ४-२२६ ।
पुष्करिण्यः सभा वापि देवतायतनानि च ।
आरामश्च विशेषेण पूर्तं कर्म विनिर्दिशेत् ॥
इष्टापूर्तस्यापरिज्यानिः । —शतपथ ब्राह्मण १३-१-५-६ ।
इष्टापूर्ते द्विजातीनां प्रथमं धर्मसाधनम् ।
इष्टेन लभते स्वर्गं पूर्ते कर्म विनिर्दिशेत् ॥ —वराहपुराणम्

६. पशुः—सर्वमविशेषेण पश्यतीति पशु । दृश् (पश्) + कु ।

७. अनश्नन्—नञ् + अश् + शतृ ।

एवमुक्तो मृत्युरुवाच नचिकेतसमुपगम्य पूजापुरःसरम्—

तिस्रो रात्रीयदवात्सीर्गृहे मे
अनश्नन्ब्रह्मन्नतिथिर्नमस्यः ।
नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन् स्वस्ति मेऽस्तु
तस्मात् प्रति त्रीन् वरान् वृणीष्व ॥ ९ ॥

अन्वय—हे ब्रह्मन् ! नमस्यः अतिथिः [सन् त्वम्] यत् मे गृहे तिस्रः रात्रीः अनश्नन् अवात्सीः । हे ब्रह्मन् ! ते नमः अस्तु । मे स्वस्ति अस्तु । तस्मात् प्रति त्रीन् वरान् वृणीष्व ॥ ९ ॥

शा० भा०—तिस्रो रात्रीर्यद्यस्मादवात्सीः उषितवानसि गृहे मे ममानश्नन् हे ब्रह्मन्नतिथिः सन्नमस्यो नमस्कारार्हश्च तस्मान्नमस्ते तुभ्यमस्तु भवतु । हे ब्रह्मन् ! स्वस्ति भद्रं मेऽस्तु तस्माद्भवतोऽनशनेन मद्गृहवासनिमित्ताद्दोषात् तत्प्राप्त्युपशमेन। यद्यपि भवदनुग्रहेण सर्वं मम स्वस्ति स्यात्तथापि त्वदधिकसम्प्रसादनार्थमनशनेनोपिताम् एकैकां रात्रिं प्रति त्रीन् वरान् वृणीष्व अभिप्रेतार्थविशेषान् प्रार्थयस्व मत्तः ॥ ९ ॥

हिन्दी—हे ब्रह्मन् ! नमस्कार-योग्य अतिथि आपने भोजन न करते हुए जो तीन रातें मेरे घर में बितायीं, इसलिए हे ब्रह्मन् ! तुम्हें नमस्कार, मेरा कल्याण हो । इसलिए [एक-एक रात के लिए एक-एक वर—इस प्रकार] तीन वरों को माँग लो ॥ ९ ॥

नचिकेतास्त्वाह यदि दित्सुर्वरान्—

शान्तसङ्कल्पः सुमना यथास्या-
द्वीतमन्युर्गौतमो माभि मृत्यो ।
त्वत्प्रसृष्टं माभिवदेत्प्रतीत
एतत्त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे ।। १० ।।

अन्वय—हे मृत्यो ! तथा गौतमः मा अभि शान्तसंकल्पः सुमना वीतमन्युः स्यात्; प्रतीतः (सन्) त्वत्प्रसृष्टं मा अभिवदेत् एतत् त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे ।। १० ।।

शा० भा०—शान्तसंकल्प उपशान्तः संकल्पो यस्य मां प्रति यमं प्राप्य किं नु करिष्यति मम पुत्र इति स शान्तसंकल्पः सुमनाः प्रसन्नमनाश्च यथा स्याद्वीत-मन्युर्विगतरोषश्च गौतमो मम पिता माभि मां प्रति हे मृत्यो किंच त्वत्प्रसृष्टं त्वया विनिर्मुक्तं प्रेषितं गृहं प्रति माभिवदेत्प्रतीतो लब्धस्मृतिः स एवायं पुत्रो ममागत इत्येवं प्रत्यभिजानन्नित्यर्थः । एतत्प्रयोजनं त्रयाणां प्रथमभाद्यं वरं वृणे प्रार्थये यत्पितुः परितोषणम् ।। १० ।।

हिन्दी—[नचिकेता ने कहा] हे मृत्यु ! गौतम [मेरे पिता] मेरे प्रति शान्तसंकल्प (निश्चिन्त), प्रसन्नचित तथा क्रोधरहित हो जायँ [और] आपके द्वारा (घर जाने के लिए) छोड़े गये मुझको पहचान करके बात करें—तीन वरों में से यह पहला वर वरण करता (माँगता) हूँ ।। १० ।।

१. शान्तसङ्कल्पः—शान्तः संकल्पो यस्य स शान्तसंकल्पः । बहुव्रीहि समास । शान्त = शम् + क्त । संकल्प = सम् + क्लृप् + (भावे) घञ् ।
२. सुमनाः—सु शोभनं मनो यस्य स सुमनाः बहुव्रीहि समास ।
३. वीतमन्युः—वीतः मन्युः यस्य सः । बहुव्रीहि समास । वीत = वि + इण् + क्त । मन्यु = मन् + युच्, उणादि ३-२० ।
४. प्रसृष्ट—प्र + सृज् + क्त ।
५. प्रतीत—प्रति + इण् + क्त ।

मृत्युरुवाच—

यथा पुरस्ताद् भविता प्रतीत
औद्दा[१]लकिरारुणिर्मत्प्रसृष्टः ।

सुखँ ्रात्रीः शयिता वीतमन्यु—
स्त्वां ददृशिवान् मृत्युमुखात् प्रमुक्तम् ॥ ११ ॥

अन्वय—मत्प्रसृष्टः औद्दालकिः आरुणिः यथा पुरस्तात् (तथा) प्रतीतः भविता। (तथा) रात्रीः सुखं शयिता। वीतमन्युः (च भविता यतः) त्वां मृत्युमुखात् प्रमुक्तं ददृशिवान् ॥ ११ ॥

शा० भा०—यथा बुद्धिस्त्वयि पुरस्तात् पूर्वमासीत् स्नेहसमन्विता पितुस्तव भविता प्रीतिसमन्वितस्तव पिता तथैव प्रतीतवान् सन्नौद्दालकिः उद्दालक एवौद्दालकिः। अरुणस्यापत्यमारुणिः,द्व्यामुष्यायणो वा। मत्प्रसृष्टो मयानुज्ञातः सन् इतरा अपि रात्रीः सुखं प्रसन्नमनाः शयिता स्वप्ता वीतमन्युर्विगतमन्युश्च भविता स्यात्त्वां पुत्रं ददृशिवान् दृष्टवान् स मृत्युमुखान्मृत्युगोचरात् प्रमुक्तं सन्तम् ॥ ११ ॥

हिन्दी— मेरे द्वारा अनुज्ञात होकर औद्दालकि आरुणि (तुम्हारा पिता) पहले की तरह तुम्हें पहचानेगा और रात्रियों में सुख से सोयेगा। क्रोधरहित (हो जायेगा; क्योंकि) तुम्हें मृत्यु के मुख से छूटा हुआ देखेगा ॥ ११ ॥

१. **"यथा पुरस्ताद् भविता प्रतीत औद्दालकिरारुणिर्मत्प्रसृष्टः"**, इस पर डायमन का अनुवाद है "औद्दालकि आरुणि पूर्ववत् हो जायेगा। मेरे द्वारा (अपने वचनों से) मुक्त हुआ वह प्रसन्न हो जायेगा।"

कार्पेण्टियर के अनुसार औद्दालकि आरुणि नचिकेता ही है उसके अनुसार इस प्रसंग का अनुवाद निम्नलिखित है :—

"पहले की भाँति वह सुखी हो जायगा, क्योंकि मैंने उद्दालक आरुणि को छोड़ दिया है।"

हिलेब्राण्ड्ट भी यही मानता है—"उद्दालक के पुत्र आरुणि को मैंने (अब) छोड़ दिया है।"

—इंडियन ऐण्टिक्वेरी (१९२०), पृष्ठ २०५-२२३।

औद्दालकिः आरुणिः।

(क) औद्दालकिः = (१) उद्दालक एव औद्दालकिः। स्वार्थे इञ्।
अथवा (२) उद्दालकस्यापत्यं पुमान् औद्दालकिः। अपत्यार्थे इञ्।

(ख) आरुणिः = अरुणस्यापत्यमारुणि। अपत्यार्थे इञ्।

औद्दालकि शब्द में स्वार्थे इञ् प्रत्यय मानने पर अरुण उद्दालक अथवा औद्दालकि का पिता होता है और यही मानना ठीक प्रतीत होता है। छान्दोग्य तथा बृहदारण्यक उपनिषदों में उद्दालक को आरुणि अर्थात् अरुण का पुत्र कहा गया है—

छन्दोग्योपनिषद् ३-११-४ उद्दालकायारुणये

,, ५-११-२ उद्दालको व······अयमारुणिः

,, ५-१७-१ उद्दालकमारुणिम्

,, ६-८-१ उद्दालको ह्यारुणिः

बृहदारण्यकोपनिषद् ३-६-१ उद्दालक आरुणिः

महाभारत में भी नचिकेता के पिता का नाम उद्दालकि आता है, जो उद्दालक एवं औद्दालकि के बीच का रूप लगता है—

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
ऋषेरुद्दालकेर्वाक्यं नचिकेतस्य चोभयोः॥

शंकराचार्य ने निम्न रूप से अर्थ किया है :—

"औद्दालकिः उद्दालक एवौद्दालकिः। अरुणस्यापत्यमारुणिः। द्व्यामुष्यायणो वा।"

द्व्यामुष्यायण का अर्थ है, वह व्यक्ति जो अपने पिता के अतिरिक्त किसी दूसरे व्यक्ति का दत्तक पुत्र भी हो। ऐसा व्यक्ति दोनों पिताओं का उत्तराधिकारी होता है।

२. ददृशिवान्—दृश् + क्वसु।

नचिकेता उवाच—

स्वर्गे लोके न भय किञ्चनास्ति
न तत्र त्वं न जरया[1] बिभेति।
उभे तीर्त्वाशनाया[2]पिपासे[3]
शोकातिगो[4] मोदते स्वर्गलोके॥ १२॥

अन्वय—स्वर्गे लोके किञ्चन भयं नास्ति। तत्र त्वं न [प्रभवसि कश्चित्] जरया न बिभेति। उभे अशनायापिपासे तीर्त्वा शोकातिगः [सन्] स्वर्गलोके मोदते॥ १॥

शा० भा०—स्वर्गे लोके रोगादिनिमित्तं भयं किञ्चन किञ्चिदपि नास्ति न च तत्र त्वं मृत्यो सहसा प्रभवस्यतो जरया युक्त इह लोकवत्त्वत्तो न बिभेति कुतश्चित् तत्र। किञ्चोभे अशनायापिपासे तीर्त्वातिक्रम्य शोकमतीत्य गच्छतीति शोकातिगः सन् मानसेन दुःखेन वर्जितो मोदते हृष्यति स्वर्गलोके दिव्ये ॥ १२ ॥

हिन्दी—हे मृत्यु ! स्वर्ग-लोक में कोई डर नहीं है। वहाँ तुम नहीं (हो, अर्थात् तुम्हारा कोई वश नहीं है।)। (वहाँ कोई) वृद्धावस्था से नहीं डरता। भूख-प्यास दोनों को पार करके, शोक से ऊपर उठकर स्वर्गलोग में पुरुष प्रसन्न होता है ॥ २३ ॥

१. **जरया**—जॄ + अङ् + टाप्। गुणः तृ० ए०
   जीर्यत्यनयेति जरा। षिद्भिदादिभ्योऽङ्। यहाँ वैदिक प्रयोग होने से तृतीया है।
   अल्सडोर्फ यहाँ जरया के स्थान पर जरायाः मानते हैं।
२. **अशनाया**—अशनमिच्छति। अशन + क्यच्, (स्त्रियां भावे अ) = क्षुधा।
३. **पिपासा**—पातुमिच्छा पिपासा। पा + सन् + अङ् + टाप्।
   पानेच्छा। "अन्नाद्वाशनाया निवर्तते पानात् पिपासो।"
   —शतपथ ब्राह्मण।
४. **शोकातिगः**—शोकः = शुच् + घञ्। चित्तविकलता। शोकमतीत्य गच्छतीति शोकातिगः।

स त्व[१]मग्नि स्वर्ग्य[२]मध्येषि मृत्यो
प्रब्रूहि त्वं श्रद्दधानाय मह्यम्।
स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्त
एतद्द्वितीयेन वृणे वरेण[३] ॥ १३ ॥

अन्वय—हे मृत्यो ! स त्वं स्वर्ग्यम् अग्निम् अध्येषि श्रद्दधानाय मह्यं प्रब्रूहि। स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्ते। एतद् द्वितीयेन वरेण वृणे ॥ १३ ॥

शा० भा०—एवंगुणविशिष्टस्य स्वर्गलोकस्य प्राप्तिसाधनभूतमग्निं स त्वं मृत्युरध्येषि स्मरसि जानासि इत्यर्थः, हे मृत्यो यतस्त्वं प्रब्रूहि कथय श्रद्दधानाय श्रद्धावते मह्यं स्वर्गार्थिने; येनाग्निना चितेन स्वर्गलोकाः स्वर्गो लोको येषां ते स्वर्गलोकाः, यजमाना अमृतत्वम् अमरणतां देवत्वं भजन्ते प्राप्नुवन्ति। तदेतदग्निविज्ञानं द्वितीयेन वरेण वृणे ॥ १३ ॥

हिन्दी—हे मृत्यु ! तुम स्वर्ग के साधन अग्नि को जानते हो। मुझ श्रद्धालु को उस (अग्नि) का उपदेश दो। स्वर्ग के निवासी अमरता को प्राप्त होते हैं। दूसरे वर से (मैं) इस (अग्निविज्ञान) को माँगता हूँ ।। १३ ।।

१. रंगरामानुज तथा भास्कर त्वम् के स्थान पर तम् पाठ मानते हैं।

२. स्वर्ग्यं—स्वर्ग + यत्।

३. वरः—वृ + अप्।

मृत्योः प्रतिज्ञेयम्—

प्र ते ब्रवीमि तदु मे निबोध
स्वर्ग्यमग्निं नाचिकेतः प्रजानन्।
अनन्तलोकाप्तिमथो प्रतिष्ठां[१]
विद्धि त्वमेतं निहितं गुहायाम् ॥ १४ ॥

अन्वय— हे) नचिकेतः प्रजानन् (अहं) ते स्वर्ग्यम् अग्निं प्रब्रवीमि। तदु मे निबोध अनन्तलोकाप्तिम् अथो प्रतिष्ठाम् एतम् (अग्नि) त्वं गुहायां निहितं विद्धि ।। १४ ।।

शा० भा०-प्र ते तुभ्यं प्रब्रवीमि; यत्त्वया प्रार्थितं तदु मे मम वचसो निबोध बुध्यस्वैकाग्रमना सन् स्वर्ग्यं स्वर्गाय हितं स्वर्गसाधनमग्निम् हे नचिकेतः प्रजानन् विज्ञातवानहं सन्नित्यर्थः प्रब्रवीमि तन्निबोधेति च शिष्यबुद्धिसमाधानार्थं वचनम्। अधुनाग्निं स्तौति। अनन्तलोकाप्तिं स्वर्गलोकफलप्राप्तिसाधनम् इत्येतत् अथो अपि प्रतिष्ठाम् आश्रयं जगतो विराड्रूपेण, तमेतमग्निं मयोच्यमानं विद्धि जानीहि त्वं निहितं स्थितं गुहायां विदुषां बुद्धौ निविष्टमित्यर्थः ।। १३ ।।

हिन्दी—हे नचिकेतः ! भलीभाँति जाननेवाला मैं तुम्हें स्वर्ग के साधनभूत अग्नि का उपदेश देता हूँ। उसे मुझसे समझ लो। तुम, (स्वर्ग रूप) अनन्तलोक की प्राप्ति के साधनभूत तथा आश्रय इस अग्नि को बुद्धिरूपी गुहा में स्थित समझो ।। १४ ।।

१. प्रतिष्ठा प्रतितिष्ठतीति। प्रति + स्था, आतश्चोपसर्गे इति भावादौ अङ् + टाप्।

गुहा—गुह + कः + टाप्।

"तस्मादिदं गुहेव हृदयम्"—शतपथ ब्राह्मण १३-१-५-६।

गुहायां शरीरस्य मध्ये ।''—तैत्तिरीयब्राह्मण १-२१-३ ।
निहित गुहायां परमे व्योमन्''—तैत्तिरीयोपनिषद् २-१-१
आत्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः''—श्वेताश्वतरोनिषद् २-१०
—महानारायणोपनिषद् ८-३ ।
''एतद्यो वेद निहितं गुहायाम्''—मुण्डकोपनिषद् १-१० ।
इदं श्रुतेर्वचनम्—

लोकादिमग्निं तमुवाच तस्मै
या इष्टका यावतीर्वा यथा वा ।
स चापि तत्प्रत्यवदद्यथाक्त—
मथास्य मृत्युः पुनरेवाह तुष्टः ।। १५ ।।

अन्वय—सः तं लोकादिम् अग्निं (तथा) या यावतीः यथा वा इष्टकाः (चेतव्याः एतत्सर्वम्) तस्मै उवाच । स चापि तद् यथोक्तं प्रत्यवदत् । अथ मृत्युः अस्य तुष्टः पुनरेवाह ।। १५ ।।

शा० भा०—लोकादि लोकानामादिं प्रथमशरीरित्वादग्निं तं प्रकृतं नचिकेतसा प्रार्थितमुवाचोक्तवान् मृत्युस्तस्मै नचिकेतसे । किं च या इष्टकाश्चेतव्याः स्वरूपेण, यावतीर्वा सङ्ख्यया, यथा वा चीयतेऽग्निर्येन प्रकारेण सर्वमेतद् उक्तवानित्यर्थः । स चापि नचिकेतास्तन्मृत्युनोक्तं यथावत्प्रत्ययेनावदत्प्रत्युच्चारितवान् । अथ तस्य प्रत्युच्चारणेन तुष्टः सन्मृत्युः पुनरेवाह वरत्रयव्यतिरेकेणान्यं वरं दित्सुः ।। १५ ।।

हिन्दी—यम ने लोकों के आदि—प्रारम्भरूप उस अग्नि का (और उस अग्नि के चयन में स्वरूप से) जैसी तथा (संख्या में) जितनी ईंटें (होती हैं) और जिस प्रकार (उनका चयन होता है—इन सबका) उपदेश उस (नचिकेता) को दिया और उस (नचिकेता) ने भी वह (उपदेश) यथावत् दुहरा दिया । तब उससे सन्तुष्ट मृत्यु फिर बोला ।। १५ ।।

छन्दोव्यवस्था की दृष्टि से इस श्लोक में ''एव'' नहीं होना चाहिए । रंग-रामानुज के अनुसार यहाँ ''पुनराह तुष्टः'' पाट है ।
कथम्—

तमब्रवीत्प्रीयमाणो महात्मा
वरं तवेहाद्य ददामि भूयः ।

तवैव नाम्ना भवितायमग्निः
सृङ्कां[1] चेमामनेकरूपां गृहाण ॥ १६ ॥[2]

अन्वय—प्रीयमाणः महात्मा तम् अब्रवीत्–तव अद्य इह भूयः वरं ददामि। अयम् अग्निः तव एव नाम्ना भविता। इमां च अनेकरूपां सृङ्कां गृहाण ॥१६॥

शा० भा०—तं नचिकेतसमब्रवीत्प्रीयमाणः शिष्ययोग्यतां पश्यन् प्रीयमाणः प्रीतिमनुभवन्महात्माक्षुद्रबुद्धिर्वरं तव चतुर्थमिहप्रीति निमित्तमद्येदानीं ददामि भूयः पुनः प्रयच्छामि। तवैव नचिकेतसो नाम्नाभिधानेन प्रसिद्धो भविता मयोच्यमानोऽयमग्निः। किं च सृङ्कां शब्दवतीं रत्नमयीं मालामिमामनेकरूपां विचित्रां गृहाण स्वीकुरु। यद्वा सृङ्काम् अकुत्सितां गतिं कर्ममयीं गृहाण। अन्यदपि कर्मविज्ञानमनेकफलहेतुत्वात्स्वीकुर्वित्यर्थः ॥ १६ ॥

हिन्दी—प्रसन्न होते हुए महात्मा यम ने उससे कहा—अब मैं तुम्हें एक और वर देता हूँ। यह अग्नि तुम्हारे ही नाम से [प्रसिद्ध] होगा। [तुम] इस अनेक रूपोंवाली माला को लो ॥ १६ ॥

१. सृङ्का—यह शब्द कठोपनिषद् के प्रथम अध्याय की द्वितीय वल्ली के तृतीय श्लोक में फिर आया है। शंकराचार्य के अनुसार इसका अर्थ निम्नलिखित है :—

अ—सृङ्कां शब्दवतीं रत्नमयीं मालामिमामनेकरूपां विचित्राम् यद्वा।

ब—सृङ्कां अकुत्सितां गतिं कर्ममयीम्।

—कठोपनिषद् १–१–१६ का भाष्य।

स—सृङ्कां सृतिं कुत्सितां मूढजनप्रवृत्तां वित्तमयीं धनप्रायाम्।

—कठोपनिषद् १–२–३ का भाष्य।

२. १६, १७ तथा १८ संख्यावाले श्लोकों को मैक्सम्यूलर प्रभृति विद्वान् प्रक्षिप्त मानते हैं।

इस प्रकार सृङ्का का अर्थ "बजने वाली रत्ननिर्मित माला" अथवा [कर्म का धनबहुल] "मार्ग" है।

पुनरपि कर्मस्तुतिमेवाह—

त्रिणाचिकेत[1]स्त्रिभिरेत्य सन्धि
त्रिकर्मकृत्तरति जन्ममृत्यू।

ब्रह्मजज्ञं[2] देवमीड्यं विदित्वा
निचाय्येमाँ शान्तिमत्यन्तमेति ॥ १७ ॥

अन्वय—त्रिणाचिकेतः त्रिभिः सन्धिम् एत्य त्रिकर्मकृत् [सन्] जन्म-मृत्यू तरति । [सः] ब्रह्मजज्ञम् ईड्यं देवं विदित्वा निचाय्य [च] इमाम् अत्यन्तं शान्तिम् एति ॥ १७ ॥

शा० भा०—त्रिणाचिकेतस्त्रिःकृत्वो नाचिकेतोऽग्निश्चितो येन स त्रिणाचिकेतस्तद्विज्ञानस्तदध्ययनस्तदनुष्ठानवान्वा । त्रिभिर्मातृपित्राचार्यैरेत्य प्राप्य सन्धि सन्धानं सम्बन्धं मात्राद्यनुशासनं यथावत्प्राप्येत्येतत् । तद्धि प्रामाण्यकारणं श्रुत्यन्तरादवगम्यते "मातृमान्पितृमानाचार्यवान् ब्रूयात्" (बृ० उ० ४।१।२) इत्यादेः । वेदस्मृतिशिष्टैर्वा प्रत्यक्षानुमानागमैर्वा । तेभ्यो हि विशुद्धिः प्रत्यक्षा, त्रिकर्मकृदिज्याध्ययनदानानां कर्ता तरत्यतिक्रामति जन्ममृत्यू । किं च ब्रह्मजज्ञं ब्रह्मणो हिरण्यगर्भाज्जातो ब्रह्मजः । ब्रह्मजश्चासौ ज्ञश्चेति ब्रह्मजज्ञः सर्वज्ञो ह्यसौ । तं देवं द्योतनाज्ज्ञानादिगुणवन्तमीड्यं स्तुत्यं विदित्वा शास्त्रतो निचाय्य दृष्ट्वा चात्मभावेनेमां स्वबुद्धिप्रत्यक्षां शान्तिम् उपरतिमत्यन्तमेत्यतिशयेनैति । वैराजं पदं ज्ञानकर्मसमुच्चयानुष्ठानेन प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ १७ ॥

हिन्दी—त्रिणाचिकेत (अर्थात् नाचिकेत अग्नि का तीन बार चयन करनेवाला) [माता, पिता तथा आचार्य अथवा वेद, स्मृति और शिष्ट अथवा प्रत्यक्ष, अनुमान तथा आगम इन] तीनों से सम्बन्ध को प्राप्त होकर [यज्ञ, अध्ययन और दान इन] तीन कर्मों का करनेवाला [वह] जन्म और मृत्यु को पार कर जाता है । ब्रह्म से उत्पन्न ज्ञानी, स्तुत्य देवता को [शास्त्रानुसार] जानकर [तथा आत्मभाव रूप से] अनुभव करके इस अत्यन्त शान्ति को प्राप्त हो जाता है ॥ १७ ॥

१. त्रिणाचिकेतः—

(१) शङ्कराचार्य-त्रिणाचिकेतस्त्रिःकृत्वो नाचिकेतोऽग्निश्चितो येन स त्रिणाचिकेतस्तद्विज्ञानस्तदध्ययनस्तदनुष्ठानवान्वा ।

—कठोपनिषद् १-१-१७ भाष्य ।

(२) त्रिणाचिकेतः पञ्चाग्निस्त्रिसुपर्णः षडङ्गवित् ।

—मनुस्मृति ३-१८५ ।

त्रिणाचिकेतः अध्वर्युवेदभागस्तद्व्रतञ्च तद्योगात् पुरुषोऽपि त्रिणाचिकेतः इति तट्टीकायां कुल्लूकभट्टः।

(३) नारायण का एक नाम त्रिणाचिकेत भी है—

पञ्चाग्ने ! त्रिणाचिकेत ! षडङ्गनिधान !

—महाभारत १२-३३८-४।

२. **ब्रह्मजज्ञम्** ब्रह्मणो जायते य इति ब्रह्मजः। ब्रह्म+जन्+ड। जानातीति ज्ञः। ज्ञा+कः। ब्रह्मजश्चासौ ज्ञश्चेति ब्रह्मजज्ञः। कर्मधारय समास।

इदानीमग्निविज्ञानचयनफलम् उपसंहरति प्रकरणं च—

त्रिणाचिकेतस्त्रयमेतद्विदित्वा
य एवं विद्वाँश्चिनुते नाचिकेतम्[१]।
स मृत्युपाशान्पुरतः प्रणोद्य
शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके॥ १८॥

अन्वय—यः त्रिणाचिकेतः विद्वान् एतत् त्रयं विदित्वा एवं नाचिकेतं चिनुते सः मृत्युपाशान् पुरतः प्रणोद्य शोकातिगः [सन्] स्वर्गलोके मोदते॥ १८॥

शा० भा०—त्रिणाचिकेतस्त्रयं यथोक्तं या इष्टका यावतीर्वा यथा वेत्येतद् विदित्वावगत्य यश्चैवमात्मरूपेण अग्निं विद्वांश्चिनुते निर्वर्तयति नाचिकेतमग्निं क्रतुं स मृत्युपाशान् अधर्माज्ञानरागद्वेषादिलक्षणान् पुरतः अग्रतः पूर्वमेव शरीरपातात् इत्यर्थः, प्रणोद्यापहाय शोकातिगो मानसैर्दुःखैर्वर्जित इत्येतत् मोदते स्वर्गलोके वैराजे विराडात्मस्वरूपप्रतिपत्त्या॥ १८॥

हिन्दी—जो त्रिणाचिकेत विद्वान् इस त्रय को [अर्थात् कौन ईंटें हों, कितनी संख्या में हों, और उनका चयन कैसे हो इसको] जानकर नाचिकेत अग्नि का चयन करता है, वह [शरीरत्याग से] पूर्व ही मृत्यु के बन्धनों को तोड़कर, शोक से पार होकर, स्वर्गलोक में आनन्दित होता है॥ १८॥

१. **नाचिकेत—**"नाचिकेतः अग्नि." इति त्रिकाण्डशेषः।
"अग्निशब्देन तद्विषयकज्ञानमुच्यते" इति गोपालयतीन्द्रः।

एष तेऽग्निर्नचिकेतः स्वर्ग्यो
यमवृणीथा द्वितीयेन वरेण ।
एतमग्निं तवैव प्रवक्ष्यन्ति जनास-
स्तृतीमं वरं नचिकेतो वृणीष्व ॥ १९ ॥

अन्वय—हे नचिकेतः ! एषः ते स्वर्ग्यः अग्निः, यं द्वितीयेन वरेण अवृणीथाः । जनासः एतम् अग्निम् तव एव नाम्ना प्रवक्ष्यन्ति । हे नचिकेतः ! तृतीयं वरं वृणीष्व ॥ १९ ॥

एष ते तुभ्यमग्निर्वरो हे नचिकेतः स्वर्ग्यः स्वर्गसाधनो यमग्निं वरमवृणीथाः प्रार्थितवानसि द्वितीयेन वरेण सोऽग्निर्वरो दत्त इत्युक्तोपसंहारः । किञ्चैतमग्निं तवैव नाम्ना प्रवक्ष्यन्ति जनासो जना इत्येतत् । एष वरो दत्तो मया चतुर्थस्तुष्टेन । तृतीयं वरं नचिकेतो वृणीष्व । तस्मिन् ह्यदत्त ऋणवानहमित्यभिप्रायः ॥ १९ ॥

हिन्दी—हे नचिकेतः ! यह है तुम्हारा स्वर्ग का साधनभूत अग्नि, जिसको तुमने दूसरे वर से माँगा था । लोग इस अग्नि को तुम्हारा ही कहेंगे । हे नचिकेतः ! तीसरा वर माँगो ॥ १९ ॥

१. तवैव—मैक्सम्यूलर प्रभृति विद्वान् तवैव को प्रक्षिप्त मानते हैं । उनके अनुसार १६-१८ श्लोक प्रक्षिप्त हैं; इसी कारण तवैव को भी इस श्लोक में प्रक्षिप्त कर दिया गया है ।

एतावद्व्यतिक्रान्तेन विधिप्रतिषेधार्थेन मन्त्रब्राह्मणेनावगन्तव्यं यद्वरद्वयसूचितं वस्तु । न आत्मतत्त्वविषययाथात्म्यविज्ञानम् । अतो विधिप्रतिषेधार्थविषयस्यात्मनि क्रियाकारकफलाध्यारोपलक्षणस्य स्वाभाविकस्याज्ञानस्य संसारबीजस्य निवृत्त्यर्थं तद्विपरीतब्रह्मात्मैकत्वविज्ञानं क्रियाकारकफलाध्यारोपलक्षणशून्यम् आत्यन्तिकनिःश्रेयसप्रयोजनं वक्तव्यमिति उत्तरो ग्रन्थ आरभ्यते । तमेतमर्थं द्वितीयवरप्राप्त्याप्यकृतार्थत्वं तृतीयवरगोचरमात्मज्ञानमन्तरेण इत्याख्यायिकया प्रपञ्चयति—यतः पूर्वस्मात् कर्मगोचरात् साध्यसाधनलक्षणादनित्याद्विरक्तस्य आत्मज्ञानेऽधिकार इति तन्निन्दार्थं पुत्राद्युपन्यासेन प्रलोभनं क्रियते ।

नचिकेता उवाच तृतीयं वरं नचिकेतो वृणीष्वेत्युक्तः सन्—

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये-
ऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके ।

एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं
वराणामेष वरस्तृतीयः ॥ २० ॥

अन्वय—प्रेते मनुष्ये या इयं विचिकित्सा (वर्तते) अस्ति इति एके; अयं न अस्ति इति च एके । त्वया अनुशिष्टः अहम् एतद् विद्याम् । वराणाम् एषः तृतीयः वरः ॥ १० ॥

येयं विचिकित्सा संशयः प्रेते मृते मनुष्येऽवीत्येके अस्ति शरीरेन्द्रियमनोबुद्धिव्यतिरिक्तो देहान्तरसम्बन्ध्यात्मेत्येके नायम् अस्तीति चैके नायमेवंविधोऽस्तीति चैकेऽतश्चास्माकं न प्रत्यक्षेण नापि वानुमानेन निर्णयविज्ञानमेतद्विज्ञानाधीनो हि परः पुरुषार्थ इत्यत एतद्विद्यां विजानीयामहम् अनुशिष्टो ज्ञापितस्त्वया । वराणाम् एष वरस्तृतीयोऽवशिष्टः ॥ २० ॥

हिन्दी—मृत मनुष्य के विषय में जो यह संदेह है—कुछ लोग कहते हैं—"रहता है", अन्य लोग कहते हैं "नहीं रहता", आपसे ज्ञापित हुआ मैं इसे जान लूँ । यह वरों में तीसरा वर है ॥ २० ॥

१. "उतेमाहुर्नैषोऽस्तीत्येनम्"—ऋग्वेद २-१२-५ ।

किमयमेकान्ततो निःश्रेयससाधनात्मज्ञानार्हो न वेत्येतत्परीक्षणार्थमाह—

देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा
न हि सुज्ञेयमणुरेष धर्मः ।
अन्यं वरं नचिकेतो वृणीष्व
मा मोपरोत्सीरति मा सृजैनम् ॥ २१ ॥

अन्वय—पुरा देवैः अपि अत्र विचिकित्सितम् । (एतत्) हि न सुज्ञेयम् । एषः धर्मः अणुः । हे नचिकेतः ! अन्यं वरं वृणीष्व । मा मां उपरोत्सीः । एनं मा अतिसृज ॥ २१ ॥

शा० भा०—देवैरप्यत्रैतस्मिन्वस्तुनि विचिकित्सितं संशयितं पुरा पूर्वं न हि सुज्ञेयं सुष्ठु ज्ञेयं श्रुतमपि प्राकृतैर्जनैर्यतोऽणुः सूक्ष्म एष आत्माख्यो धर्मोऽतोऽन्यमसन्दिग्धफलं वरं नचिकेतो वृणीष्व । मा मां मोपरोत्सीरुपरोधं मा कार्षीरधमर्णम् इवोत्तमर्णः । अतिसृज विमुञ्च एनं वरं मा मां प्रति ॥ २१ ॥

हिन्दी--प्राचीनकाल में देवताओं ने भी इस विषय में सन्देह किया था। यह आसानी से नहीं जाना जा सकता। यह धर्म-आत्मा सूक्ष्म है। हे नचिकेतः! दूसरा वर माँग लो। मुझे मत उपरुद्ध करो। इस (वर) को मेरे लिए छोड़ दो। [अथवा मुझे इस (वर) से मुक्त कर दो—राधाकृष्णन्।]॥ २१॥

देवैरत्रापि विचिकित्सितं किल
त्वं च मृत्यो यन्न सुज्ञेयमात्थ।
वक्ता चास्य त्वादृगन्यो न लभ्यः
नान्यो वरस्तुल्य एतस्य कश्चित्॥ २२॥

अन्वय—अत्र देवैः अपि विचिकित्सितं किल। हे मृत्यो! त्वं च यद् [एतत्] न सुज्ञेयम् (इति) आत्थ। अस्य वक्ता च त्वादृग् अन्यः न लभ्यः। एतस्य तुल्यः अन्यः कश्चित् वरः न॥ २२॥

शा० भा०—देवैरत्राप्येतस्मिन्वस्तुनि विचिकित्सितं किलेति भवत एव नः श्रुतम्। त्वं च मृत्यो यद्यस्मान्न सुज्ञेयमात्मतत्त्वमात्थ कथयसि, अतः पण्डितैरप्यवेदनीयत्वाद् वक्ता चास्य धर्मस्य त्वादृक्त्वत्तुल्यः अन्यः पण्डितश्च न लभ्यः अन्विष्यमाणोऽपि। अयं तु वरो निःश्रेयसप्राप्तिहेतुः। अतो नान्यो वरस्तुल्यः सदृशोऽस्त्येतस्य कश्चिदप्यनित्यफलत्वादन्यस्य सर्वस्यैवेत्यभिप्रायः॥ २२॥

हिन्दी—(नचिकेता ने कहा) मृत्यो! देवताओं ने भी इस विषम में सन्देह किया था, और तुम भी कहते हो कि यह आसानी से जानने योग्य नहीं है तथा इसका उपदेशक (भी) तुम्हारी तरह (कोई) दूसरा नहीं मिलेगा। इसके समान कोई दूसरा वर नहीं है॥ २२॥

१. त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते। —गीता ६-३९

एवमुक्तोऽपि पुनः प्रलोभयन्नुवाच मृत्युः—

शतायुषः पुत्रपौत्रान् वृणीष्व
बहून् पशून् हस्तिहिरण्यमश्वान्।
भूमेर्महदायतनं वृणीष्व
स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि[१]॥ २३॥

अन्वय—शतायुषः पुत्रपौत्रान् वृणीष्व । बहून पशून् हस्तिहिरण्यम् अश्वान् (वृणीष्व) । भूमेर्महदायतनं वृणीष्व । स्वयं च यावत् शरदः इच्छसि जी ॥ २३ ॥

शा० भा०—शतायुषः शतं वर्षाण्यायूंषि एषां तान्शतायुषः पुत्रपौत्रान् वृणीष्व । किं च गवादिलक्षणान् बहून् हस्तिहिरण्य हस्ती च हिरण्यं च हस्तिहिरण्यम् अश्वांश्च किं च भूमेः पृथिव्या महद्विस्तीर्णमायतनमाश्रयं मण्डलं राज्यं वृणीष्व । किं च सर्वमप्येतद् अनर्थकं स्वयं चेदल्पायुरित्यत आह—स्वयं च जीव त्वं जीव धारय शरीरं समग्रेन्द्रियकलापं शरदो वर्षाणि यावदिच्छसि जीवितुम् ॥ २३ ॥

हिन्दी—(हे नचिकेतः) तुम सौ वर्ष की आयुवाले पुत्र-पौत्र, बहुत-से पशु, हाथी, स्वर्ण और घोड़े माँग लो । पृथिवी का विशाल मण्डल अर्थात् राज्य माँग लो, और स्वयं जितने वर्ष चाहो जिओ ॥ २३ ॥

१. क्या छन्दोव्यवस्था की दृष्टि से "च" को छोड़ दिया जाय ?

एतत्तुल्यं यदि मन्यसे वरं
वृणीष्व वित्तं चिरजीविकां[1] च ।
महाभूमौ नचिकतस्त्वमेधि[2]
कामानां त्वा कामभाजं करोमि ॥२४॥

अन्वय—एतत्तुल्यं यदि (अन्यं) वरं मन्यसे (तम्) वृणीष्व । वित्तं चिरजीविकां च वृणीष्व । हे नचिकेतः ! त्वं महाभूमौ एधि । (अहं) त्वा कामानां कामभाजं करोमि ॥ २ ॥

शा० भा०—एतत्तुल्यमेतेन यथोपदिष्टेन सदृशमन्यमपि यदि मन्यसे वरं तमपि वृणीष्व । किं च वित्तं प्रभूतं हिरण्यरत्नादि चिरजिविकां च वित्तेन सह वृणीष्वेत्येतत् । किं बहुना महत्यां भूमौ राजा नचिकेतस्त्वमेधि भव । किं चान्यत्कामानां दिव्यानां मानुषाणां च त्वा त्वां कामभाजं कामभागिनं कामाहं करोमि । सत्यसंकल्पो ह्यहं देवः ॥ २४ ॥

हिन्दी—इसके बराबर यदि (कोई दूसरा वर समझते हो तो उसे और धन तथा दीर्घजीविका माँग लो । हे नचिकेतः ! । (तुम इस) विस्तृत पृथ्वी पर

वृद्धि प्राप्त करो। मैं तुमको भोगों को इच्छानुसार भोगनेवाला बना देता हूँ ॥ २४ ॥

१. चिरजिविका "लाङ्गेस लेबेन"–दीर्घ जीवन–वेलर।

—फेर्जूख आइनेर क्रिटिक देयर कठोपनिषद्, पृष्ठ २२

एधि–वृद्धि प्राप्त करो। (राजा) बनो–शंकर।

ये ये कामा[1] दुर्लभा मर्त्यलोके
सर्वान् कामाँश्छन्दतः प्रार्थयस्व।
इमा रामाः सरथा[2] सतूर्या[3]
न हीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः।
आभिर्मत्प्रत्ताभिः परिचारयस्व
नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षीः ॥ २५ ॥

अन्वय—मर्त्यलोके ये ये कामाः दुर्लभाः (तान्) सर्वान् कामान् छन्दतः प्रार्थयस्व। इमाः सरथाः सतूर्याः रामाः। ईदृशाः मनुष्यैः न लम्भनीयाः हि। मत्प्रत्ताभिः आभिः परिचारयस्व। हे नचिकेतः! मरणं मा अनुप्राक्षीः ॥ २५ ॥

शा० भा०–ये ये कामाः प्रार्थनीया दुर्लभाश्च मर्त्यलोके सर्वांस्तान् कामांश्छन्दत इच्छातः प्रार्थयस्व। किं चेमा दिव्या अप्सरसो रमयन्ति पुरुषानिति रामाः सह रथैर्वर्तन्त इति सरथाः सतूर्याः सवादित्रास्ताश्च न हि लम्भनीयाः प्रापणीया ईदृशा एवंविधा मनुष्यैर्मर्त्यैरस्मदादिप्रसादमन्तरेण। आभिर्मत्प्रत्ताभिर्मया दत्ताभिः परिचारिणीभिः परिचारयस्व आत्मानं पादप्रक्षालनादिशुश्रूषां कारयात्मन इत्यर्थः। नचिकेतो मरणं मरणसम्बद्धं प्रश्नं प्रेतेऽस्ति नास्तीति काकदन्तपरीक्षारूपं मानुप्राक्षीर्मैवं प्रष्टुमर्हसि ॥ २५ ॥

हिन्दी—मर्त्यलोक में जो-जो भोग दुर्लभ हैं, (उन) भोगों को इच्छानुसार माँग लो। रथ तथा बाजों से युक्त ये रमणियाँ (हैं)। ऐसी (स्त्रियाँ) मनुष्यों को प्राप्त नहीं हैं। मेरे द्वारा दी गयी इन (स्त्रियों) से (तुम अपनी) परिचर्या कराओ। हे नचिकेतः! मरण को -अर्थात् मरणसम्बन्धी प्रश्न को मत पूछो ॥ २५ ॥

१. कामाः—काम्यन्ते इति कामाः = भोगाः ।

२. सरथाः—रथेन सह वर्तन्त इति सरथाः ।

३. सतूर्याः—तूर्येण सह वर्तन्त इति सतूर्याः ।

एवं प्रलोभ्यमानोऽपि नचिकेता महाह्रदवदक्षोभ्य आह—

श्वोभावा[1] मर्त्यस्य यदन्तकै[2]तत्
सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः ।
अपि सर्वं जीवितमल्पमेव
तवैव वाहास्तव नृत्यगीते ।। २६ ।।

अन्वय--हे अन्तक ! श्वोभावाः कामाः सर्वेन्द्रियाणां तेजः जरयन्ति । सर्वम् अपि जीवितम् अल्पम् एव । तव एव वाहाः; तव (एव) नृत्यगीते (सन्तु) ।। २६ ।।

शा० भा०--श्वो भविष्यन्ति न भविष्यन्ति वेति सन्दिह्यमान एव येषां भावो भवनं त्वयोपन्यस्तानां भोगानां ते श्वोभावाः । किं च मर्त्यस्य मनुष्यस्यान्तक हे मृत्यो यदेतत्सर्वेन्द्रियाणां तेजस्तज्जरयन्ति अपक्षयन्त्यप्सरःप्रभृतयो भोगाः । अनर्थायैवैते धर्मवीर्यप्रजातेजोयशः प्रभृतानां क्षपयितृत्वात् । यां चापि दीर्घजीविकां त्वं दित्ससि तत्रापि शृणु । सर्वं यद् ब्रह्मणोऽपि जीवितमायुरल्पमेव किमुतास्मदादिदीर्घजीविका अतस्तवैव तिष्ठन्तु वाहा रथादयः तथा नृत्यगीते च ।। २६ ।।

हिन्दी--हे मृत्यु ! (ये भोग) "कल रहेंगे या नहीं रहेंगे" ऐसे हैं, (अर्थात् अनित्य हैं और) सभी इन्द्रियों के तेज को जीर्ण कर देते हैं । सम्पूर्ण जीवन भी थोड़ा ही है । वाहन आपके ही (रहें, अर्थात् आपके पास ही रहें और) नाचगान (भी) आपका (ही रहे, अर्थात् आपके पास ही रहें) ।। २६ ।।

१. श्वोभाव :--श्वस् + भाव ।

(क) श्वो भविष्यन्ति न भविष्यन्ति वेति सन्दिह्यमान एक येषां भावो भवनं त्वयोपन्यस्तानां भोगानां ते श्वोभावाः—शकराचार्य ।

—कठ, १-२६ का भाष्य ।

(ख) "भावी कल की (वस्तुएँ)—रोअर तथा बोथलिक ।

(ग) "वे जो (भावी) कल आयेंगी"—ह्विटनी ।

—ट्रान्सऐक्शन्स २१-८-७ ।

(घ) "ये वस्तुएँ जो कल तक रहेंगी"—मैक्सम्यूलर ।

—सैक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट सीरीज़, वाल्यूम १५, पृष्ठ ६ ।

(ङ) "जो (भावी) कल तक नष्ट हो जायेंगी—डायसन ।

—जेख्ट्जीग् उपनिषद्स, पृष्ठ २ १ ।

(च) "वे अनित्य हैं"—(१) कार्पेण्टियर । इण्डियन ऐण्टिक्वेरी ५७, पृष्ठ २२५ ।

(२) राब्सन् ।—कठोपनिषद्, पृष्ठ ७७ ।

२. अन्तकः—अन्तं करोतिति अन्तकः यमः ।

किं च

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो
लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत्त्वा । ।
जीविष्यामो यावदीशिष्यसि त्वं
वरस्तु मे वरणीयः स एव ॥२७॥

अन्वय—मनुष्य वित्तेन न तर्पणीयः । चेत् त्वा अद्राक्ष्म वित्तं लप्स्यामहे । यावत् त्वम् ईशिष्यसि (तावत्) जीविष्यामः । मे वरस्तु स एव वरणीयः ॥२७॥

शा० भा०—न प्रभूतन वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः । न हि लोके वित्तलाभः कस्यचित्तृप्तिकरो दृष्टः । यदि नामास्माकं वित्ततृष्णा स्याल्लप्स्यामहे प्राप्स्यामह इत्येतद्वित्तमद्राक्ष्म दृष्टवन्तो वयं चेत्त्वा त्वाम् । जीवितमपि तथैव । जीविष्यामो यावद्याम्ये पदे त्वम् ईशिष्यसीशिष्यसे प्रभुः स्याः कथं हि मर्त्यस्त्वया समेत्याल्पधनायुर्भवेत् । वरस्तु मे वरणीयः स एव यदात्मविज्ञानम् ॥ २७ ॥

हिन्दी—मनुष्य धन से तृप्त नहीं किया जा सकता । यदि आपको देख लिया है तो धन हम पा जायेंगे । जब तक आप शासन करेंगे, हम जियेंगे । (परन्तु) प्रार्थनीय वर (आत्मविज्ञान) तो वही है ॥ २७ ॥

१. "जब आपको देख लिया है तो क्या हम धन पायेंगे ?"
—ह्विटनी।
—ट्रान्सऐक्शन्स २१, पृष्ठ ९७।

यतश्च—

[1]अजीर्यताममृतानामुपेत्य
जीर्यन्मर्त्यः क्वधःस्थः[2] प्रजानन्।
अभिध्यायन् वर्णरतिप्रमोदा-
नतिदीर्घे जीविते को रमेत ॥२८॥

अन्वय—कः प्रजानन् जीर्यन् क्वधःस्थः मर्त्यः अजीर्यताम् अमृतानाम् उपेत्य वर्णरतिप्रमोदान् अभिध्यायन् अतिदीर्घे जीविते रमेत ॥ २८ ॥

शा० भा०—अजीर्यतां वयोहानिमप्राप्नुवताममृतानां सकाशमुपेत्योपगम्यात्मन उत्कृष्टं प्रयोजनान्तरं प्राप्तव्यं तेभ्यः प्रजानन् उपलभमानः स्वयं तु जीर्यन्मर्त्यो जरामरणवान् क्वधःस्थः। कुः पृथिवी अधश्चान्तरिक्षादिलोकापेक्षया तस्यां तिष्ठतीति क्वधःस्थः सन् कथमेवमविवेकिभिः प्रार्थनीयं पुत्रवित्तहिरण्याद्यस्थिरं वृणीते। क्व तदास्थ इति वा पाठान्तरम्। अस्मिन्पक्षे चाक्षरयोजना। तेषु पुत्रादिष्वास्था आस्थितिः तात्पर्येण वर्तनं यस्य स तदास्थः। ततोऽधिकतरं पुरुषार्थं दुष्प्रापमपि प्रापिपयिषुः क्व तदास्थो भवेन्न कश्चित्तदसारज्ञस्तदर्थी स्याद् इत्यर्थः। सर्वो ह्युपर्युपर्येव बुभूषति लोकः तस्मान्न पुत्रवित्तादिलोभैः प्रलोभ्योऽहम्। किं चाप्सरःप्रमुखान् वर्णरतिप्रमोदाननवस्थितरूपतयाभिध्यायन्निरूपयन् यथावत् अतिदीर्घे जीविते को विवेकी रमेत ॥ २८ ॥

हिन्दी—कौन विवेकी, जराग्रस्त होनेवाला, नीचे पृथ्वी पर रहनेवाला, मरणधर्मा (मनुष्य), जराग्रस्त होनेवाले अमरों के पास पहुँचकर, वर्ण के राग से होनेवाले सुखों को (अनित्य रूप में) जानता हुआ (भी) दीर्घ जीवन में रमण करेगा ॥ २८ ॥

१. "अजीर्यताम्"—वयोहानिमप्राप्नुवताममृतानाम्।
—शंकराचार्य, १–२–२८ का भाष्य।

२. क्वधःस्थः—

(१) कुः पृथिवी अधश्चान्तरिक्षादिलोकापेक्षया तस्यां तिष्ठतीति क्वधःस्थः।
--शंकराचार्य, कठोपनिषद् १-१-२८ का भाष्य।

क्व तदास्थः इति पाठान्तरम्।

(२) क्वधःस्थः = कुस्थ + अधस्थ।--रेनो।

(३) को + अधस्थः।--कुछ पाश्चात्य विद्वान्।

"अजीर्यताम्" इस षष्ठी बहुवचन रूप के स्थान पर मैक्सम्यूलर "अजीर्यताम्" यह द्वितीया एकवचन का रूप कल्पित करते हैं। इस प्रकार अनुवाद होगा, "देवताओं की जराग्रस्त न होनेवाली अवस्था को"। मेरे मत से ऐसा कल्पित पाठान्तर असंगत है।

अतो विहायानित्यैः कामैः प्रलोभनं यन्मया प्रार्थितम्--

यस्मिन्निदं विचिकित्सन्ति मृत्यो
यत्साम्पराये[1] महति ब्रूहि नस्तत्।
योऽयं वरो गूढमनुप्रविष्टो
नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीते॥ २९॥

अन्वय--हे मृत्यो! यस्मिन् इदम् (अस्ति नास्तीति) विचिकित्सन्ति। यत् महति साम्पराये (विज्ञानं) तत् नः ब्रूहि। गूढम् अनुप्रविष्टः यः अयं वरः तस्मात् अन्यं (वरं) नचिकेता न वृणीते॥ २९॥

शा० भा०—यस्मिन्प्रेत इदं विचिकित्सन्ति अस्ति नास्तीत्येवं प्रकारे हे मृत्यो साम्पराये परलोकविषये महति महत्प्रयोजननिमित्ते आत्मनो निर्णयविज्ञानं यत्तद् ब्रूहि कथय नोऽस्मभ्यम्। किं बहुना योऽयं प्रकृत आत्मविषयो वरो गूढं गहनं दुर्विवेचनं प्राप्तोऽनुप्रविष्टः। तस्माद्वरादन्यमविवेकिभिः प्रार्थनीयमनित्यविषयं वरं नचिकेता न वृणीते मनसापीति श्रुतेर्वचनमिति॥ २९॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यगोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यश्रीमदाचार्य-
श्रीशंकरभगवतः कृतौ कठोपनिषद्भाष्ये प्रथमाध्याये
प्रथमवल्लीभाष्यं समाप्तम्॥ १॥

हिन्दी—हे मृत्यो ! जिस (मृत मनुष्य) के विषय में लोग (है या नहीं है) यह सन्देह करते हैं (और) महान् परलोक के विषय में जो (विज्ञान); है वह हमसे कहिये। गहनता में अनुप्रविष्ट जो यह वर है, इससे अन्य (कोई दूसरा) वर नचिकेता नहीं माँगता ॥ २९ ॥

१. साम्पराय :—

(१) सम्पर ईयत इति सम्परायः परलोकः, सम्पराय एव साम्परायः।

(२) सम्+पर+इ+अच् = सम्परायः। गमनम्।

प्रथमवल्ली समाप्त।

———

द्वितीया वल्ली

परीक्ष्य शिष्यं विद्यायोग्यतां चावगम्याह—

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेय-
स्ते उभे नानार्थे पुरुषꣳ सिनीतः।
तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति
हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते ॥ १ ॥

अन्वय—श्रेयः अन्यत् उत प्रेयः अन्यत् एव। नानार्थे उभे ते पुरुषं सिनीतः। तयोः श्रेयः आददानस्य साधु भवति। यः प्रेयो वृणीते [सः] अर्थात् हीयते ॥ १ ॥

शा० भा०—अन्यत् पृथगेव श्रेयो निःश्रेयसं तथान्यदुताप्येव प्रेयः प्रियतरमपि। ते प्रेयःश्रेयसी उभे नानार्थे भिन्नप्रयोजने सती पुरुषमधिकृतं वर्णाश्रमादिविशिष्टं सिनीतो बध्नीतस्ताभ्यामात्मकर्तव्यतया प्रयुज्यते सर्वः पुरुषः। श्रेयःप्रेयसोर्ह्यभ्युदयामृतत्वार्थी पुरुषः प्रवर्तते। अतः श्रेयः प्रेयः प्रयोजनकर्तव्यतया ताभ्यां बद्ध इत्युच्यते सर्वं पुरुषः।

ते यद्यप्येकैकपुरुषार्थसम्बन्धिनी विद्याविद्यारूपत्वाद् विरुद्धे इत्यन्यतरापरित्यागेनैकेन पुरुषेण सहानुष्ठातुमशक्यत्वात् तयोर्हित्वा विद्यारूपं प्रेयः श्रेय एव केवलमाददानस्योपादानं कुर्वतः साधु शोभनं शिवं भवति। यस्त्वदूरदर्शी विमूढो हीयते वियुज्यतेऽस्मादर्थात् पुरुषार्थात् पारमार्थिकात् प्रयोजनान्नित्यात् प्रच्यवत इत्यर्थः। कोऽसौ य उ प्रेयो वृणीत उपादत्त इत्येतत्॥ १॥

हिन्दी—श्रेय (विद्या) अन्य है तथा प्रेय (अविद्या) अन्य ही है। भिन्न प्रयोजनवाले वे दोनों पुरुष को बाँधते हैं। उन दोनों में से श्रेय का ग्रहण करनेवाले का कल्याण होता है और जो प्रेय का वरण करता है, वह पुरुषार्थ से गिर जाता है॥ १॥

१. श्रेयः—प्रशस्य + ईयसुन् "द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ" इति ईयसुन्।

प्रयस्य > श्र + ईयस् "प्रशस्यस्य श्रः" (पा० ५-३-६०) इति प्रशस्यस्य श्रादेशः।

श्रेयः = कशस्यतरः।

२. प्रेयः—प्रिय + ईयसुन् प्रिय < प्र + ईयस् "प्रियस्थिर" (पा० ६-४-१५७) इत्यादिना प्रियस्य प्रादेशः।

प्र + ईयस् = प्रेयः = प्रियतरः।

यद्युभे अपि कर्तुं स्वायत्ते पुरुषेण किमर्थं प्रेय एवादत्ते बाहुल्येन लोक इत्युच्यते—

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेत-
स्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते
प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद्[1] वृणीते॥ २॥

अन्वय—श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यम् एतः। धीरः तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः प्रेयः अभि श्रेय वृणीते। मन्दः योगक्षेमात् प्रेयः वृणीते॥ २॥

शा० भा०—सत्यं स्वायत्ते तथापि साधनतः फलतश्च मन्दबुद्धीनां दुर्विवेकरूपे सती व्यामिश्रीभूते इव मनुष्यमेतं पुरुषमा इतः प्राप्नुतः श्रेयश्च प्रेयश्च । अतो हंस इवाम्भसः पयस्तौ श्रेयःप्रेयःपदार्थौ सम्परीत्य सम्यक् परिगम्य मनसालोच्य गुरुलाघवं विविनक्ति पृथक्करोति धीरो धीमान् । विविच्य च श्रेयो श्रेय एवाभिवृणीते प्रेयसोऽभ्यर्हितवात् । कोऽसौ ? धीरः । यश्च मन्दोऽल्पबुद्धिः स विवेकासामर्थ्याद्योगक्षेमनिमित्तं शरीराद्युपचयरक्षणनिमित्तमित्येतत्प्रेयः पशुपुत्रादिलक्षणं वृणीते ॥ २ ॥

हिन्दी—श्रेय और प्रेय (दोनों मिले हुए-से) मनुष्य के पास आते हैं । बुद्धिमान् उन दोनों को सम्यक् रूप से समझकर पृथक् करता है । धीर प्रेय की अपेक्षा श्रेय का वरण करता है (और) अल्पबुद्धि योगक्षेम के कारण प्रेय का वरण करता है ॥ २ ॥

१. योगक्षेमात्—योगश्च क्षेमश्च तयोः समाहारः योगक्षेमम्, तस्मात् ।
अप्राप्तस्य प्राप्तिः योगः प्राप्तस्य रक्षणं क्षेमः
योगक्षेमौ शरीरस्थितिपालने इति—जयमङ्गलाटीका, भट्टिकाव्य ५-५० ।
(अ योगक्षेमं व आदायाहं भूयासमुत्तमः ।—ऋग्वेद १०-१६६-५ ।
(ब) अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥—गीता ९-२२ ।

स त्वं[1] प्रियान् प्रियरूपाँश्च कामा-
नभिध्यायन्नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः ।
नैताँ सृङ्कां वित्तमयीमवाप्तो
यस्यां मज्जन्ति[3] बहवो मनुष्याः ॥ ३ ॥

अन्वय—(हे नचिकेतः !) स त्वं प्रियान् प्रियरूपांश्च कामान् अभिध्यायन् अत्यस्राक्षीः । यस्यां बहवः मनुष्याः मज्जन्ति (ताम्) एताम् वित्तमयीम् सृङ्कां न अवाप्तः (असि) ॥ ३ ॥

शा० भा०—स त्वं पुनः पुनर्मया प्रलोभ्यमानोऽपि प्रियान् पुत्रादीन् प्रियरूपांश्चाप्सरःप्रभृतिलक्षणान् कामानभिध्यायंश्चिन्तयंस्तेषाम् अनित्यत्वासारत्वादिदोषान्

हे नचिकेतोऽत्यस्राक्षीरतिसृष्टवान् परित्यक्तवानस्यहो बुद्धिमत्ता तव । नैतामवाप्तवानसि सृङ्कां सृतिं कुत्सितां मूढजनप्रवृत्तां वित्तमयीं धनप्रायाम् । यस्यां सृतौ मज्जन्ति सीदन्ति बहवोऽनेके मूढा मनुष्याः ॥ ३ ॥

हिन्दी—हे नचिकेतः! उस तुमने पुत्रादि प्रिय तथा अप्सरा प्रभृति प्रियरूप भोगों को (असार) समझते हुए छोड़ दिया है। जिसमें बहुत-से मनुष्य डूब जाते हैं, (उस) इस धनबहुल (निन्दित) मार्ग को नहीं प्राप्त हुए हो ॥ ३ ॥

१. पुत्र आदि प्रिय हैं; तथा अप्सरा आदि प्रियरूप हैं; अर्थात् प्रिय रूप वाले हैं।

२. सृङ्का—१.१६ की टिप्पणी देखिये।

३. राधाकृष्णन् के अनुसार (प्रिन्सिपल उपनिषद्स्, पृष्ठ ६०९) यदि सृङ्का का अर्थ शृङ्खला है तो यहाँ "लज्जन्ति" के स्थान पर "सज्जन्ति" पाठ होना चाहिए। मैं समझता हूँ कि अपनी इच्छा के अनुसार अर्थ बैठाने के लिए पाठ बदलने का यह सुझाव सर्वथा हेय है।

तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति हीयतेऽर्थाच्च उ प्रेमी वृणीत इत्युक्तम् तत्कस्माद्यतः—

दूरमेते विपरीते विषूची[1]
अविद्या या च विद्येति ज्ञाता।
विद्याभीप्सितं नचिकेतसं मन्ये
न त्वा कामा बहवोऽलोलुपन्त[2] ॥ ४ ॥

अन्वय—या अविद्या (इति) विद्या इति च ज्ञाता; एते दूरं विपरीते विषूची। (अहं त्वां) नचिकेतसं विद्याभीप्सितं मन्ये। बहवः कामाः त्वा न अलोलुपन्त ॥ ४ ॥

शा० भा०—दूरं दूरेण महतान्तरेणैते विपरीते अन्योन्यव्यावृत्तरूपे विवेकाविवेकात्मकत्वात्तमःप्रकाशाविव। विषूची विषूच्यौ नानागती भिन्नफले संसारमोक्षहेतुत्वेनेत्येतत्। के त इत्युच्यते या चाविद्या प्रेयोविषया विद्येति च श्रेयोविषया

ज्ञाता निर्गतावगता पण्डितैः । तत्र विद्याभीप्सितं विद्यार्थिनं नचिकेतसं त्वामहं मन्ये । कस्माद्यस्मादविद्वद्बुद्धिप्रलोभिनः कामा अप्सरः प्रभृतयो बहवोऽपि त्वा त्वां नालोलुपन्त न विच्छेदं कृतवन्तः श्रेयोमार्गादात्मोपभोगाभिवाञ्छासम्पादनेन । अतो विद्यार्थिनं श्रेयोभाजनं मन्य इत्यभिप्रायः ।। ४ ।।

हिन्दी--जो अविद्या (अज्ञान) और विद्या (ज्ञान) इस प्रकार से जानी गयी हैं; ये दोनों (एक दूसरे से) बिलकुल विरुद्ध [हैं और] भिन्न-भिन्न फलवाली हैं । [मैं तुम] नचिकेता को विद्यार्थी (श्रेयोभाजन) मानता हूँ । तुम्हें बहुत-से भोगों ने नहीं लुभाया ।। ४ ।।

१. विषूची--विष्वच् > विषूची विषूच्यौ । नानागती, भिन्नफले ।

२. कुछ पाण्डुलिपियों में "अलोलुपन्त" के स्थान पर "लोलुपन्ते" और "लोलुपन्ति" पाठ मिलते हैं ।

दूरमेते विपरीते विषूची अविद्याया च विद्येति ज्ञाता ।
विद्याभीप्सितं नचिकेतसं मन्ये न त्वा कामा बहवो लोलुपन्ते ।।

--मैत्रायण्युपनिषद् ७-९ ।

ये तु संसारभाजनाः--

अविद्या[1]यामन्तरे वर्तमानाः
स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः[2] ।
दन्द्रम्यमाणाः[3] परियन्ति मूढा
अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ।। ५ ।।

अन्वय--अविद्यायाम् अन्तरे वर्तमानाः, स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः, दन्द्रम्यमाणाः मूढाः अन्धेन एव नीयमानाः यथा अन्धाः [तथा] परियन्ति ।। ५ ।।

शा० भा०-अविद्यायामन्तरे मध्ये घनीभूत इव तमसि वर्तमाना वेष्ट्यमानाः, पुत्रपश्वादितृष्णापाशशतैः । स्वयं धीराः प्रज्ञावन्तः पण्डिताः शास्त्रकुशलाश्चेति मन्यमानास्ते दन्द्रम्यमाणा अत्यर्थं कुटिलामनेकरूपां गतिम् इच्छन्तो जरामरणरोगादिदुःखैः परियन्ति परिगच्छन्ति मूढा अविवेकिनोऽन्धेनैव दृष्टिविहीनेनैव नीयमाना विषमे पथि यथा बहवोऽन्धा महान्तमनर्थमृच्छन्ति तद्वत् ।। ५ ।।

हिन्दी--अविद्या के भीतर रहनेवाले, अपने आप [अपने को] बुद्धिमान् [तथा] पण्डित समझनेवाले, अनेक रूप कुटिल गति चलते हुए, मूढलोग, अन्धों के द्वारा ले जाये जानेवाले अन्धों के समान भटकते हैं ॥ ५ ॥

१. (i) अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः ।
जघन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ॥
--मुण्डकोपनिषद् १-२-८ ।

(ii) अविद्यायां बहुधा वर्तमाना वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः ।
--मुण्डकोपनिषद् १-२-९ ।

(iii) अविद्यायामन्तरे वेष्टयमानाः स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः ।
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ॥
मैत्रायण्युपनिषद् ७-९ ।

२. मन्यमानाः--मन्+शानच् ।

३. दन्द्रम्यमाणाः--द्रम् (गतौ + यङ्) "नित्यं कौटिल्ये गतौ" शानच्+जस् ।
(पा० ३-१-२३) इति यङ्

अतएव मूढत्वात्--

न साम्परायः[1] प्रतिभाति बालं
प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम् ।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी
पुनः पुनर्वशमापद्यते मे ॥ ६ ॥

अन्वय--साम्परायः बालं प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढं [प्रति] न प्रतिभाति । अयं लोकः [अस्ति] परः [लोकः] नास्ति इति मानी पुनः पुनः मे वशम् आपद्यते ॥ ६ ॥

शा० भा०--न साम्परायः प्रतिभाति । सम्पर ईयत इति सम्परायः परलोकस्तत्प्राप्तिप्रयोजनः साधनविशेषः शास्त्रीयः साम्परायः । स च बालमविवेकिनं प्रति न प्रतिभाति न प्रकाशते नोपतिष्ठत इत्येतत् ।

प्रमाद्यन्तं प्रमादं कुर्वन्तं पुत्रपश्वादिप्रयोजनेष्वासक्तमनसं तथा वित्तमोहेन वित्तनिमित्तेनाविवेकेन मूढं तमसाच्छन्नं सन्तम्। अयमेव लोको योऽयं दृश्यमानः स्त्र्यन्नपानादिविशिष्टो नास्ति परोऽदृष्टो लोकं इत्येवं मननशीलो मानी पुनः पुनर्जनित्वा वशं यदधीनतामापद्यते मे मृत्योर्मम। जननमरणादिलक्षणदुःखप्रबन्धारूढ एव भवतीत्यर्थः। प्रायेण ह्येवंविध एव लोकः॥ ६॥

हिन्दी—प्रमाद करनेवाले, धन के मोह से मुग्ध मूर्ख को परलोक (अथवा परलोक का शास्त्रीय साधन नहीं) दिखायी देता। यह लोक [है] पर [लोक] नहीं है—ऐसा माननेवाला बार-बार [उत्पन्न होकर] मेरे [अर्थात् मृत्यु के] वश को प्राप्त होता है॥ ६॥

१. साम्परायः—सम्पर ईयते गम्यत इति सम्परायः परलोकः। सम्पराय एव साम्परायः यद्वा सम्परायः परलोकः तत्प्राप्तिप्रयोजनः साधनविशेषः शास्त्रीयः साम्परायः।

यस्तु श्रेयोऽर्थी सहस्रेषु कश्चिदेवात्मविद्भवति त्वद्विधो यस्मात्—

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः
शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्यु।
[1]आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा-
श्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः॥ ७॥

अन्वय—यः बहुभिः श्रवणाय अपि न लभ्यः, शृण्वन्तोऽपि बहवः यं न विद्युः [तस्य] अस्य वक्ता आश्चर्यः, लब्धा आश्चर्यः, कुशलानुशिष्टः ज्ञाता [च] आश्चर्यः॥ ७॥

शा० भा०—श्रवणायापि श्रवणार्थं श्रोतुम् अपि यो न लभ्य आत्मा बहुभिरनेकैः; शृण्वन्तोऽपि बहवोऽनेकेऽन्ये यमात्मानं न विद्युर्न विदन्त्यभागिनोऽसंस्कृतात्मानो न विजानीयुः। किं चास्य वक्तापि आश्चर्योऽद्भुतवदेवानेकेषु कश्चिद् एव भवति। तथा श्रुत्वाप्यस्य आत्मनः कुशलो निपुण एवानेकेषु लब्धा कश्चिदेव भवति। यस्माद् आश्चर्यो ज्ञाता कश्चिदेव कुशलानुशिष्टः कुशलेन निपुणेन आचार्येणानुशिष्टः सन्॥ ७॥

हिन्दी—जो [आत्मतत्त्व] बहुतों को सुनने के लिए भी प्राप्य नहीं है; सुनते हुए भी बहुत-से लोग जिसको नहीं जानते; [उस] इस [आत्मा] का प्रवचनकर्ता आश्चर्य [पुरुष—अर्थात् अनेकों में एक] होता है; इसका ग्रहण करनेवाला [भी] निपुण [ही] होता है; तथा निपुण [आचार्य] के द्वारा उपदिष्ट इसका जाननेवाला भी आश्चर्य [पुरुष] होता है ॥ ७ ॥

१. यह पूरा मन्त्र श्रीमद्भगवद्गीता में कुछ परिवर्तनों के साथ दिया गया है; यथा—

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः ।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥

—गीता २-२९ ।

कस्मात्—

न नरेणावरेण प्रोक्त एष
सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः ।
अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्ति
अणीयान्ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात्[1] ॥ ८ ॥

अन्वय—बहुधा चिन्त्यमानः एषः अवरेण नरेण प्रोक्तः [सन्] न सुविज्ञेयः । अनन्यप्रोक्ते अत्र गतिः नास्ति । अणुप्रमाणात् अणीयान् [आत्मा] हि अतर्क्यम् [अस्ति] ॥ ८ ॥

शा० भा०—न हि नरेण मनुष्येणावरेण प्रोक्तेऽवरेण हीनेन प्राकृतबुद्धिना इत्येतदुक्त एष आत्मा यं त्वं मां पृच्छसि । न हि सुष्ठु सम्यग्विज्ञेयो विज्ञातुं शक्यो यस्माद् बहुधास्ति नास्ति कर्ताकर्ता शुद्धोऽशुद्ध इत्याद्यनेकधा चिन्त्यमानो वादिभिः । कथं पुनः सुविज्ञेय इत्युच्यते—अनन्यप्रोक्तेऽनन्येन अपृथग्दर्शिना आचार्येण प्रतिपाद्यब्रह्मात्मभूतेन प्रोक्त उक्त आत्मनि गतिरनेकधास्ति नास्तीत्यादिलक्षणा चिन्ता गतिरत्रास्मिन् आत्मनि नास्ति न विद्यते सर्वविकल्पगतिप्रत्यस्मितत्वादात्मनः । अथवा स्वात्मभूतेऽनन्यस्मिन् आत्मनि प्रोक्तेऽनन्यप्रोक्ते गतिः अत्रान्यावगतिर्नास्ति ज्ञेयस्यान्यस्याभावात् । ज्ञानस्य ह्येषा परा निष्ठा यदा-

त्मैकत्वविज्ञानम् । अतोऽवगन्तव्याभावान्न गतिः अत्रावशिष्यते । संसारगतिर्वात्र नास्त्यनन्य आत्मनि प्रोक्ते नान्तरीयकत्वात् तद्विज्ञानफलस्य मोक्षस्य । अथवा प्रोच्यमानब्रह्मात्मभूतेनाचार्येण प्रोक्त आत्मनि अगतिरनवबोधोऽपरिज्ञानम् अत्र नास्ति । भवेत्यवावगतिस्तद्विषया श्रोतुस्तदस्म्यहमित्याचार्यस्येवेत्यर्थः । एव सुविज्ञेय आत्मा आगमवता आचार्येणानन्यतया प्रोक्तः । इतरथा ह्यणीयानणु-प्रमाणादपि सम्पद्यत आत्मा । अतर्क्यमतर्क्यः । स्वबुद्ध्याभ्यूहेन केवलेन तर्केण तर्क्यमाणेऽणुपरिमाणे केनचित् स्थापित आत्मनि ततो ह्यणुतरम् अन्योऽभ्यूहति ततोप्यन्योऽणुतमामिति न हि कुतर्कस्य निष्ठा क्वचिद्विद्यते ॥ ८ ॥

हिन्दी—बहुत प्रकार से समझा जाता हुआ यह आत्मा हीन मनुष्य के द्वारा उपदिष्ट होने पर सम्यक् रूप से नहीं ज्ञात हो सकता । अपृथग्दर्शी आचार्य के द्वारा उपदिष्ट होने पर इस आत्मा के विषय में गति (सन्देह) नहीं रहता । यह आत्मा अणु से अधिक सूक्ष्म [है और] तर्क का विषय नहीं [है] ॥ ८ ॥

१. मैक्सम्यूलर "अणुप्रमाणात्" के स्थान पर "अनुप्रमाणात्" पाठ कहता है । [सैक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट, वाल्यूम १५, पृष्ठ ९ (कठोपनिषद्) । यह आहोपुरुषिका मात्र है ।

नैषा तर्केण मतिरापनेया[१]
प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ ।
यां त्वमापः सत्यधृतिर्बतासि
त्वादृङ्नो भूयान्नचिकेतः प्रष्टा ॥ ९ ॥

अन्वय—हे प्रेष्ठ ! अन्येन एव प्रोक्ता एषा मतिः यां त्वम् आपः तर्केण न आपनेया अन्येन एव प्रोक्ता एष मतिः सुज्ञानाय । सत्यधृतिः बत असि । हे नचि-केतः ! त्वादृक् प्रष्टा न भूयात् ॥ ९ ॥

शा० भा०—अतोऽनन्यप्रोक्त आत्मनि उत्पन्ना येयमागमप्रतिपाद्यात्ममति-र्नैषा तर्केण स्वबुद्ध्यभ्यूहमात्रेणोपनेया न प्रापणीयेत्यर्थः । नापनेतव्या वा न हातव्या तार्किको ह्यनागमज्ञः स्वबुद्धिपरिकल्पितं तत्कञ्चिदेव कथयति । अत एव

च येयमागमप्रभूता मतिरन्येनैवागमाभिज्ञेन आचार्येणैव तार्किकात्प्रोक्ता सती सुज्ञानाय भवति हे प्रेष्ठ प्रियतम ! का पुनः सा तर्कागम्या मतिरित्युच्यते--यां त्वं मतिं मद्वरप्रदानेन आपः प्राप्तवानसि । सत्या अवितथविषया धृतिर्यस्य तव स त्वं सत्यधृतिर्बतासीत्यनुकम्पयन्नाह मृत्युर्नचिकेतसं वक्ष्यमाणविज्ञानस्तुतये । त्वादृक्त्वत्तुल्यो नः अस्मभ्यं भूयाद् भवतात् भवत्वन्यः पुत्रः शिष्यो वा प्रष्टा; कीदृग्यादृक्त्वं हे नचिकेतः प्रष्टा ॥ ९ ॥

हिन्दी--हे प्रियतम ! [तार्किकमात्र] भिन्न आचार्य के द्वारा उपदिष्ट यह बुद्धि जिसको तुम प्राप्त हुए तर्क से प्राप्य नहीं है । अपथग्दर्शी आचार्य द्वारा उपदिष्ट किये जाने पर ही यह बुद्धि सम्यग् ज्ञान का कारण होती है । अहा ! तुम सत्य धारण करनेवाले हो । हे नचिकेतः ! हमें तुम्हारी तरह प्रश्न करनेवाला मिले ॥ ९ ॥

१. "आपनेया" के स्थान पर मैक्सम्यूलर "सुज्ञानाय" की भाँति "आपनाय" पाठ का सुझाव देते हैं । श्रुति के स्वरूप को बदलनेवाले ऐसे सुझाव सर्वथा अमान्य हैं ।

पुनरपि तुष्ट आह—

जानाम्यहँ शेवधिरित्यनित्यं
न ह्यध्रुवैः प्राप्यते हि ध्रुवं तत् ।
ततो मया नाचिकेतश्चितोऽग्नि-
रनित्यैर्द्रव्यैः प्राप्तवानस्मि नित्यम् ॥१०॥[१]

अन्वय--शेवधिः अनित्यम् इति अहं जानामि । ध्रुवं तत् अध्रुवैः हि न प्राप्यते । ततः मया नाचिकेतः अग्निः चितः । अनित्यैः द्रव्यैः नित्यं प्राप्तवान् अस्मि ॥१०॥

शा० भा०—जानाम्यहं शेवधिर्निधिः कर्मफललक्षणो निधिरिव प्रार्थ्यत इति । असावनित्यमनित्य इति जानामि । न हि यस्मादनित्यैः अध्रुवैर्नित्यं ध्रुवं तत्प्राप्यते परमात्माख्यः शेवधिः । यस्त्वनित्यसुखात्मकः शेवधिः स एवानित्यैर्द्रव्यैः प्राप्यते । हि यतस्ततस्तस्मान्मया जानतापि नित्यमनित्यसाधनैर्न प्राप्यत इति

नाचिकेतश्चितोऽग्निः अनित्यैः पश्वादिभिः स्वर्गसुखसाधनभूतोग्निर्निर्वर्तित इत्यर्थः। तेनाहमधिकारापन्नो नित्यं याम्यं स्थानं स्वर्गाख्यं नित्यमापेक्षिकं प्राप्तवानस्मि ॥ १० ॥

हिन्दी—"(कर्मफलरूप) निधि नश्वर है"--यह मैं जानता हूँ। वह नित्य (आत्मा) अनित्य साधनों से नहीं प्राप्त होता। तब मेरे द्वारा नाचिकेत अग्नि का चयन किया गया। अनित्य (पशु आदि) पदार्थों से (आपेक्षिक) नित्य (यम-पद) को प्राप्त हुआ हूँ॥ १० ॥

(१) ह्यूम तथा मैक्सम्यूलर के अनुसार यह श्लोक नचिकेता की उक्ति है। उनके अनुसार इस श्लोक का अनुवाद निम्नलिखित है--

"नचिकेता ने कहा--मैं जानता हूँ कि निधि अनित्य है, अनित्य पदार्थों से नित्य की प्राप्ति नहीं होती। इसलिए हमने (पहले) नाचिकेत अग्नि का चयन किया। अनित्य पदार्थों के द्वारा नित्य (यम के उपदेश) को मैंने प्राप्त किया है।"

(२) ह्विटनी का अनुवाद है--"मैं जानता हूँ कि निधि अनित्य है। अस्थिर वस्तुओं से स्थिर वस्तु नहीं प्राप्त होती। अतः हमने नाचिकेत अग्नि का चयन किया तथा अनित्य पदार्थों से नित्य को प्राप्त किया।--ट्रान्सऐक्शन्स २१, पृ० १००। वहीं ह्विटनी कहता है कि यह श्लोक सम्भवतः नचिकेता की उक्ति है, किन्तु स्पष्ट रूप से ऐसा नहीं है, इसलिए यह श्लोक प्रक्षिप्त मालूम होता है।'.

(३) रोअर का अनुवाद है--'मैं जानता हूं कि सांसारिक सुख अनित्य है। वह ध्रुव, अध्रुव से नहीं प्राप्त हो सकता। अतः मैंने नाचिकेत अग्नि का चयन किया और अनित्य पदार्थों से नित्य (याम्य-पद) को प्राप्त किया।"

--बिब्लिओथिका इण्डिका १५, पृ० १०४।

इसी प्रकार कार्पेण्टियर, राब्सन्, आटो, डायसन आदि अनुवाद करते हैं।

कामस्याप्तिं जगतः प्रतिष्ठां
क्रतोरनन्त्यमभयस्य पारम्।

स्तोममहदुरुगायं प्रतिष्ठां दृष्ट्वा
धृत्या धीरो नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः ॥ ११ ॥

अन्वय--हे नचिकेतः ! धीरः (त्वम्) कामस्य आप्ति, जगतः प्रतिष्ठां, क्रतोः अनन्त्यम् अभयस्य पारं, स्तोममहत् उरुगायं प्रतिष्ठां दृष्ट्वा धृत्या अत्यस्राक्षीः ॥ ११ ॥

शा० भा०--त्वं तु कामस्याप्तिं समाप्तिम्; अत्रैवेहैव सर्वे कामाः परिसमाप्ता जगतः साध्यात्माधिभूताधिदैवादेः प्रतिष्ठामाश्रयं सर्वात्मकत्वात् क्रतोः फलं हिरण्यगर्भ पदमनन्त्यमानन्त्यम्, अभयस्य च पारं परां निष्ठां, स्तोमं स्तुत्यं महदणिमाद्यैश्वर्याद्यनेकगुणसंहतं स्तोमं च तन्महच्च निरतिशयत्वात् स्तोममहत्, उरुगायं विस्तीर्णां गतिं, प्रतिष्ठां स्थितिमात्मनोऽनुत्तमामपि दृष्ट्वा धृत्या धैर्येण धीरो धीमान्सन् नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः परमेव आकाङ्क्षन्नतिसृष्टवानसि सर्वमेतत् संसारभोगजातम् । अहो ! बतानुत्तमगुणोऽसि ॥ ११ ॥

हिन्दी--हे नचिकेतः ! (बुद्धिमान् तुमने भोगों की समाप्ति पराकाष्ठा), संसार के आश्रय, यज्ञ के अनन्त फल, अभय (भयरहित) की सीमा, स्तुत्य महान् विस्तीर्ण गति, [तथा] प्रतिष्ठा (स्थिति) को देख कर उन सबको धैर्य पूर्वक छोड़ दिया ॥ ११ ॥

यं त्वं ज्ञातुमिच्छस्यात्मानम्--

तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं
गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम् ।
अध्यात्मयोगाधिगमेन[1] देवं
मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति ॥ २१ ॥

अन्वय--धीरं दुर्दर्शं गूढम् अनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणं; देवं अध्यात्मयोगाधिगमेन मत्वा हर्षशोकौ जहाति ॥ २१ ॥

शा० भा०--तं दुर्दर्शं दुःखेन दर्शनम् अस्येति दुर्दर्शोऽतिसूक्ष्मत्वात्; गूढं गहनमनुप्रविष्टं प्राकृतविषयविकारविज्ञानैः प्रच्छन्नमित्येतत्, गुहाहितं गुहायां बुद्धौ स्थितं तत्रोपलभ्यमानत्वात् गह्वरेष्ठम् गह्वरे विषमेऽनेकानर्थसंकटे तिष्ठतीति

गह्वरेष्ठम् । यत एवं गूढमनुप्रविष्टो गुहाहितश्चातो गह्वरेष्ठः, अतो दुर्दर्शः । तं पुराणं पुरातनमध्यात्मयोगाधिगमेन विषयेभ्यः प्रतिसंहृत्य चेतस आत्मनि समाधानम् अध्यात्मयोगस्तस्याधिगमस्तेन मत्वा देवमात्मानं धीरो हर्षशोकावात्मन उत्कर्षापकर्षयोः अभावाज्जहाति ॥ १२ ॥

हिन्दी—बुद्धिमान्, उस कठिनाई से दिखायी देनेवाले, गूढ स्थान में अनुप्रविष्ट, बुद्धिरूप गुहा में स्थित, गहन स्थान में स्थित, पुरातन देव को अध्यात्मयोग की प्राप्ति के द्वारा जानकर, हर्ष और शोक को छोड देता है ॥ १२ ॥

१. अध्यात्मयोगाधिगमेन—विषयेभ्यः प्रतिसंहृत्य चेतस आत्मनि समाधानम् अध्यात्मयोगः तस्य अधिगमः प्राप्तिः अध्यात्मयोगाधिगमः तेन ।

किं च—

एतच्छ्रुत्वा सम्परिगृह्य मर्त्यः
प्रवृह्य धर्म्यमणुमेतमाप्य ।
स मोदते मोदनीयं हि लब्ध्वा
विवृतं सद्म नचिकेतसं मन्ये ॥ १३ ॥[1]

अन्वय—सः मर्त्यः एतत् श्रुत्वा, सम्परिगृह्य, अणुं धर्म्यम् एतं प्रवृह्य, आप्य, मोदनीयं लब्ध्वा मोदते हि । [त्वां] नचिकेतसं [प्रति] विवृतं सद्म मन्ये ॥ १३ ॥

शा० भा०—एतदात्मतत्त्वं यदहं वक्ष्यामि तच्छ्रुत्वाचार्यप्रसादात्सम्यगात्मभावेन परिगृह्योपादाय मर्त्यो मरणधर्मा धर्मादनपेतं धर्म्यं प्रवृह्योद्यम्य पृथक्कृत्य शरीरादेः अणुं सूक्ष्ममेतमात्मानमाप्य प्राप्य स मर्त्यो विद्वान् मोदते मोदनीयं हर्षणीयमात्मानं लब्ध्वा । तदेतदेवंविधं ब्रह्मसद्म भवनं नचिकेतसं त्वां प्रत्यपावृतद्वारं विवृतमभिमुखीभूतं मन्ये मोक्षार्हं त्वां मन्य इत्यभिप्रायः ॥ १३ ॥

हिन्दी—मरणधर्मा मनुष्य इस [आत्मा] का श्रवण करके, सम्यग् [आत्मभावरूप से] ग्रहण करके, धर्मी [और] सूक्ष्म आत्मा को [शरीरादि से] पृथक् करके [और] इस [आत्मा] को प्राप्त करके, आनन्द के विषय को पाकर आनन्दित होता है । मैं तुम नचिकेता को खुले हुए [ब्रह्म]

भवनवाला समझता हूँ। [अर्थात् समझता हूँ कि तुम्हारे लिए मोक्ष का द्वार खुला हुआ है]॥ १३ ॥

१–कहा जाता है कि इस श्लोक में श्रवण("श्रुत्वा"),मनन("सम्परिगृह्य") और निदिध्यासन ("प्रवृह्य") का उत्पादन किया गया है । कहा भी गया है—

'आत्मा वा अरे ! श्रोतव्यो-मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः ।

यद्यहं योग्यः प्रसन्नश्चासि भगवन्मां प्रति—

अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मा-
दन्यत्रास्मात्कृताकृतात् ।
अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च
यत्तत्पश्यसि तद्वद ॥ १४ ॥

अन्वय—तत् धर्मात् अन्यत्र अधर्मात् अन्यत्र, अस्मात् कृताकृतात् अन्यत्र, भूतात् च अन्यत्र, भव्यात् च अन्यत्र यत् पश्यसि तद् वद ॥ १४ ॥

शा० भा०—अन्यत्र धर्माच्छास्त्रीयाद्धर्मानुष्ठानात्तत्फलात्तत्कारकेभ्यश्च पृथग्भूतमित्यर्थः । तथा अन्यत्र अधर्मात्तथान्यत्रास्मात्कृताकृतात् कृतं कार्यम् अकृतं कारणमस्मात् अन्यत्र । किं चान्यत्र भूताच्चातिक्रान्तात्कालाद्भव्याच्च भविष्यतश्च तथा वर्तमानात् कालत्रयेण यन्न परिच्छिद्यत इत्यर्थः । यद् ईदृशं वस्तु सर्वव्यवहारगोचरातीतं पश्यसि तद्वद मह्यम् ॥ १४ ॥

हिन्दी—धर्म से अलग, अधर्म से अलग, इस कार्य तथा कारण से अलग, भूतकाल से अलग और भविष्यत्काल से अलग जिसे आप देखते हैं, उसे कहिये ॥ १४ ॥

इत्येवं पृष्टवते मृत्युरुवाच पृष्टं वस्तु विशेषणान्तरं च विवक्षन्—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति
तपाँसि सर्वाणि च यद्वदन्ति ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदँ सङ्ग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥१५॥

अन्वय—सर्वे वेदाः यत् पदम् आमनन्ति, सर्वाणि तपांसि च यद् वदन्ति, यद् इच्छन्तः ब्रह्मचर्यं चरन्ति, तत् पदं ते सङ्ग्रहेण ब्रवीमि। ॐ इति एतत् ॥ १५ ॥

शा० भा०—सर्वे वेदा यत्पदं पदनीयं गमनीयमविभागेनामनन्ति प्रतिपादयन्ति। तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति यत्प्राप्त्यर्थानीत्यर्थः। यादच्छन्तो ब्रह्मचर्यं गुरुकुलवासलक्षणमन्यद्वा ब्रह्मप्राप्त्यर्थं चरन्ति तत्ते तुभ्यं पदं यज्ज्ञातुम् इच्छसि सङ्ग्रहेण सङ्क्षेपतो ब्रवीमि। ओमित्येतत्। तदेतत्पदं यद्बुभुत्सितं त्वया। यदेतद् ओमित्योंशब्दवाच्यमोंशब्दप्रतीकं च ॥ १५ ॥

हिन्दी—सभी वेद जिस पद (पदनीय, गमनीय अर्थात् गन्तव्य) का प्रतिपादन करते हैं, सभी तप जिसको कहते हैं—अर्थात् सभी तप जिसके लिए हैं; जिसकी इच्छा करते हुए ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं; उस पद को मैं संक्षेप में तुमसे कहता हूँ। ॐ यही पद है ॥ १५ ॥

१. पद-(i) शब्द

(ii) [गन्तव्य] स्थान। पद् गतौ>पद।

२. **ओमिति तिस्रो मात्राः।**

—मैत्रायण्युपनिषद् ६–३।

ॐ = अ + उ + म्

व्याख्याकार तीनों अक्षरों को क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और शिव का वाचक तथा प्रतीक मानते हैं।

३. इस मन्त्र के समानार्थक मन्त्र विभिन्न स्थलों पर देखे जा सकते हैं, यथा—

(i) **छन्दांसि यज्ञाः क्रतवो व्रतानि भूतं भव्यं यच्च वेदा वदन्ति।**
अस्मान् मायी सृजते विश्वमेतत् तस्मिंश्चान्यो मायया सन्निरुद्धः॥

—श्वेताश्वतरोपनिषद् ४–९।

(ii) **यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।**
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं सङ्ग्रहेण प्रवक्ष्ये॥

—गीता ८-११

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥

—गीता ८–१३।

अतः—

एतद्ध्येवाक्षरं[1] ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्॥ १६ ॥[2]

अन्वय—हि एतद् अक्षरम् एव [अपरं] ब्रह्म। एतद् अक्षरम् एव परं [ब्रह्म] हि। एतद् अक्षरम् एव ज्ञात्वा यः यद् इच्छति तस्य तत् [भवति] ॥ १६ ॥

शा० भा०—एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्मापरमेतद्ध्येवाक्षरं परं च। तयोर्हि प्रतीकमेतदक्षरम् एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वोपास्य ब्रह्मेति यो यदिच्छति परमपरं वा तस्य तद् भवति। परं चेज्ज्ञातव्यमपरं चेत्प्राप्तव्यम् ॥ १६ ॥

हिन्दी—यह [ॐरूप] अक्षर ही [अपर] ब्रह्म है, यह अक्षर ही पर [ब्रह्म] है। इसी अक्षर को जानकर जो जिसकी इच्छा करता है, वह उसका [हो जाता] है ॥ १६ ॥

१. **अक्षरम्**—क्षयरहित। ब्रह्म तथा शब्द अक्षर कहे जाते हैं।

(१) अक्षर = ध्वनि—रोअर बिब्लिओथिका खण्डिका १५, पृष्ठ १०५।
(२) वर्ण—बोथलिंक, ह्विटनी, डायसन, हर्टल, हिलेब्राण्ड्ट, गेल्डनर, रेनो।
(३) (अविनाशी) वर्ण—मैक्सम्यूलर एस० बी० ई०, १५, पृष्ठ १०।
(४) (नित्य) वर्ण—कार्पेण्टयर आई० ए० ५७, पृष्ठ २२७।
(५) —राब्सन कठोपनिषद्, पृष्ठ १०१।

२. इस मन्त्र का समानार्थक मन्त्र मैत्रायणी उपनिषद् में देखा जा सकता है, यथा—

एतदेवाक्षरं पुण्यमेतदेवाक्षरं परम्।
एतदेवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्॥

—मैत्रायण्युपनिषद् ६–४।

यत एवमतः—

एतदालम्बनँ श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् ।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके[1] महीयते ॥ १७ ॥

यत एवमतः—

अन्वय—एतत् श्रेष्ठम् आलम्बनम् । एतद् परम् आलम्बनम् । एतद् आलम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥ १७ ॥

शा० भा०—एतदालम्बनमेतद् ब्रह्मप्राप्त्यालम्बनानां श्रेष्ठं प्रशस्यतमम् । एतदालम्बनं परमपरं परापरब्रह्मविषयत्वात् । एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते परस्मिन् ब्रह्मणि । अपरस्मिंश्च ब्रह्मभूतो ब्रह्मवदुपास्यो भवतीत्यर्थः ॥ १७ ॥

हिन्दी—यह सर्वोत्तम आश्रय है, यह पर आश्रय है । इस आश्रय को जानकर जीव ब्रह्मलोक में महान् होता है ॥ १७ ॥

१. ब्रह्मलोक—ब्रह्म एव लोकः यद्वा ब्रह्मणः लोकः ।

अन्यत्र धर्मादित्यादिना पृष्टस्यात्मनोऽशेषविशेषरहितस्य आलम्बनत्वेन प्रतीकत्वेन चोङ्कारो निर्दिष्टः, अपरस्य च ब्रह्मणो मन्दमध्यमप्रतिपत्तॄन् प्रति । अथेदानीं तस्योङ्कारालम्बनस्यात्मनः साक्षात्स्वरूपनिर्दिधारयिषया इदमुच्यते—

न जायते म्रियते वा विपश्चि-
न्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित् ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ १८ ॥[1]

अन्वय—अयं विपश्चित् न जायते [न] वा म्रियते । अयं कुतश्चित् न बभूव । [अयं] कश्चित् न [बभूव] । अजः नित्यः शाश्वतः पुराणः अयं शरीरे हन्यमाने न हन्यते ॥ १८ ॥

शा० भा०—न जायते नोत्पद्यते म्रियते वा न म्रियते चोत्पत्तिमतो वस्तुनोऽनित्यस्य अनेकविक्रियाः तासामाद्यन्ते जन्मविनाशलक्षणे विक्रिये इहात्मनि प्रतिषिध्येते प्रथमं सर्वविक्रियाप्रतिषेधार्थं न जायते म्रियते वेति । विपश्चिन्मेधावी अविपरिलुप्तचैतन्यस्वभावात् । किं च नायमात्मा कुतश्चित् कारणान्तराद् बभूव कश्चिदर्थान्तरभूतः । अतोऽयमात्माजो नित्यःशाश्वतोऽपक्षयविवर्जितः यो ह्यशाश्वतः

सोऽपक्षीयते, अयं तु शाश्वतोऽस्त एव पुराणः पुरापि नव एवेति। यो ह्यवयवोपनयद्वारेणाभिनिर्वर्त्यते स इदानीं नवो यथा कुम्भादिः। तद्विपरीतस्त्वात्मा पुराणो वृद्धिविवर्जित इत्यर्थः। यत एवमतो न हन्यते हन्यमाने शस्त्रादिभिः शरीरे। तत्स्थोऽप्याकाशवदेव ॥ १८ ॥

हिन्दी—मेधावी [आत्मा] न पैदा होता है, न मरता है; यह किसी [अन्य कारण] से नहीं [उत्पन्न] हुआ; [यह स्वतः] कुछ [अन्य वस्तु] नहीं हुआ। अजन्मा, नित्य, सनातन, पुरातन यह [आत्मा] शरीर के मारे जाते समय नहीं मरता है ॥ १८ ॥

१. इस मन्त्र का समानार्थक श्लोक अन्यत्र भी देखा जा सकता है—

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

—गीता २-२०।

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुँ, हतश्चेन्मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो, नायं हन्ति न हन्यते ॥ १९ ॥

अन्वय—चेत् हन्ता [आत्मानं] हन्तुं मन्यते; चेत् हतः [आत्मानं] हतं मन्यते, उभौ तौ न विजानीतः। अयम् [आत्मा] न हन्ति। [अयम् आत्मा] न हन्यते ॥ १९ ॥

शा० भा०—एवं भूतमप्यात्मानं शरीरमात्रात्मदृष्टिर्हन्ता चेद्यदि मन्यते चिन्तयति हन्तुं हनिष्याम्येनम् इति योऽप्यन्यो हतः सोऽपि चेन्मन्यते हतमात्मानं हतोऽहमित्युभावपि तौ न विजानीतः स्वमात्मानं यतो नायं हन्ति अविक्रियत्वादात्मनस्तथा न हन्यत आकाशवदविक्रियत्वादेव। अतोऽनात्मज्ञविषय एव धर्माधर्मादिलक्षणः संसारो न ब्रह्मज्ञस्य। श्रुतिप्रामाण्यान्न्यायाच्च धर्माधर्माद्यनुपपत्तेः ॥ १९ ॥

हिन्दी—यदि मारनेवाला [आत्मा को] मारने का विचार करता है [और] यदि मारा जानेवाला [आत्मा] मारा हुआ, मानता है [-तो] वे दोनों [आत्मा को] नहीं जानते। यह न मरता है [और न] मारा जाता है ॥ १९ ॥

१. "येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके"। इस प्रकार से नचिकेता के द्वारा पूछे गये आत्मा की नित्यता और अनित्यता-विषयक प्रश्न का यहाँ उन्नीसवें श्लोक में सीधा और स्पष्ट उत्तर है "यह नहीं मरता"। जो लोग "अस्ति" कहते हैं वे ठीक हैं तथा जो लोग "नास्ति" कहते हैं वे ठीक नहीं हैं। वैसे नचिकेता के प्रश्न का उत्तर १-२-१२ श्लोक से ही मिलता है तथा आगे सम्पूर्ण ग्रन्थ में उसका विस्तार है।
इस मन्त्र का समानार्थक श्लोक गीता में भी दिया गया है—

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥—गीता २-१८।

कथं पुनरात्मानं जानातीत्युच्यते—

अणोरणीयान्महतो महीया—
नात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको
धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः ॥२०॥

अन्वय—अणोः अणीयान् महतः महीयान् आत्मा अस्य जन्तोः गुहायां निहितः। अक्रतुः धातुप्रसादात् आत्मनः महिमानं पश्यति। [ततः] वीतशोकः [भवति] ॥ २० ॥

शा० भा०—अणोः सूक्ष्मादणीयाञ्छ्यामाकादेरणुतरः। महतो महत्परिमाणान्महीयान्महत्तरः पृथिव्यादेः अणु महद्वा यदस्ति लोके वस्तु तत्तेनैवात्मना नित्येन आत्मवत् सम्भवति। तदात्मना विनिर्मुक्तमसत्सम्पद्यते। तस्मादसावेवात्माणोरणीयान्महतो महीयान्सर्वनामरूपवस्तूपाधिकत्वात् स चात्मास्य जन्तोर्ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तस्य प्राणिजातस्य गुहायां हृदये निहित आत्मभूतः स्थित इत्यर्थः। तमात्मानं दर्शनश्रवणमननविज्ञानलिङ्गमक्रतुरकामो दृष्टादृष्टबाह्यविषयोपरतबुद्धिरित्यर्थः। यदा चैवं तदा मनआदीनि करणानि धातवः शरीरस्य धारणात् प्रसीदन्तीत्येषां धातूनां प्रसादादात्मनो महिमानं कर्मनिमित्तवृद्धिक्षयरहितं पश्यत्ययम् अहमस्मीति साक्षाद्विजानाति। ततो वीतशोको भवति ॥ २० ॥

हिन्दी—सूक्ष्म से भी अधिक सूक्ष्म, महान् से भी अधिक महान् आत्मा इस जीव के (हृदयरूप) गुहा में स्थित है। निष्काम पुरुष इन्द्रियों की प्रसन्नता से आत्मा की महिमा को देखता है (और) शोकरहित (हो जाता है) ॥ २० ॥

१. (१) धातुः प्रसादात्—पाठान्तर। धातुः प्रसादात्। जगतो विधाता-परमेश्वरः तस्य प्रसादोऽनुग्रहः। —विद्यारत्न।

(२) मनआदीनि करणानि धातवः शरीरस्य धारणात्।

—शङ्कराचार्य १-२-२० का भाष्य।

२. (१) अणोरणीयान्महतो महीयानात्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः।
तमक्रतुं पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमीशम् ॥

—श्वेताश्वतरोपनिषद् ३-२०।

अन्यथा दुर्विज्ञेयोऽयमात्मा कामिभिः प्राकृतपुरुषैः यस्मात्—

आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः।
कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति ॥ २१ ॥

अन्वय—आसीनः दूरं व्रजति, शयानः सर्वतः याति, तं मदामदं देवं मत् अन्यः कः ज्ञातुम् अर्हति ॥२१॥

शा० भा०—आसीनोऽवस्थितोऽचल एव सन् दूरं व्रजति। शयानो याति सर्वत एवमसावात्मा देवो मदामदः समदोऽमदश्च सहर्षोऽहर्षश्च विरुद्धधर्मवान् अतोऽशक्यत्वाज्ज्ञातुं कस्तं मदामद देव मदन्यो ज्ञातुमर्हति। अस्मदादेरेव सूक्ष्मबुद्धेः पण्डितस्य सुविज्ञेयोऽयमात्मा स्थितिगतिनित्यादिविरुद्धानेकधर्मोपाधिकत्वाद्विरुद्धधमवत्त्वाद्विश्वरूप इव चिन्तामणिवदवभासते। अतो दुर्विज्ञयत्वं दर्शयति कस्त मदन्यो ज्ञातुमर्हतीति। करणानामुपशमः शयनं करणजनितस्यैकदेशविज्ञानस्य उपशमः शयानस्य भवति। यदा चैवं केवलसामान्यविज्ञानत्वात् सर्वतो यातीव यदा विशेषविज्ञानस्थः स्वेन रूपेण स्थित एव सन्मनआदिगतिषु तदुपाधिकत्वाद् दूरं व्रजतीव। स चेहैव वर्तते ॥२१॥

हिन्दी—अचल (वह) दूर तक चलता है, सोता हुआ सब ओर जाता है। हर्ष से युक्त (और) हर्ष से रहित उस देव को मेरे अतिरिक्त और कौन जान सकता है ॥ २१ ॥

१. इस मन्त्र के समानार्थक मन्त्र निम्नलिखित हैं :—

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनं देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत् ।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत् तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके ।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥

—ईशोपनिषद् ४-५ ।

तद्विज्ञानाच्च शोकात्यय इत्यपि दर्शयति—

अशरीरँ शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम् ।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥ २२ ॥

अन्वय—धीरः शरीरेषु अशरीरम्, अनवस्थेषु अवस्थितं महान्तं विभुम् आत्मानं मत्वा न शोचति ॥ २२ ॥

शा० भा०—अशरीरं स्वेन रूपेण आकाशकल्प आत्मा तमशरीरं शरीरेषु देवपितृमनुष्यादिशरीरेषु अनवस्थेष्ववस्थितिरहितेष्ववस्थितं नित्यमविकृतमित्येतत्, महान्तं महत्त्वस्यापेक्षिकत्वशङ्कायामाह विभुं व्यापिनमात्मानम् आत्मग्रहणं स्वतोऽनन्यत्वप्रदर्शनार्थम्, आत्मशब्दः प्रत्यगात्मविषय एव मुख्यस्तमीदृशमात्मानं मत्वा अयमहमिति धीरो धीमान्न शोचति। न ह्येवंविधस्य आत्मविदः शोकोपपत्तिः ॥ २२ ॥

हिन्दी—बुद्धिमान् पुरुष शरीरों में शरीररहित, अनित्यों में नित्यस्वरूप, महान्, सर्वव्यापक आत्मा को जानकर शोक नहीं करता ॥ २२ ॥

यद्यपि दुर्विज्ञेयोऽयमात्मा तथाप्युपायेन सुविज्ञेय एवेत्याह—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन ।

यमेवैष वृणुते तेन लभ्य-
स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूँ स्वाम्[2] ॥ २३ ॥

अन्वय—अयमात्मा न प्रवचनेन, न मेधया, न बहुना श्रुतेन लभ्यः । एषः यं वृणुते तेन एव लभ्यः । एषः आत्मा स्वां तनूं तस्य विवृणुते ॥ २३ ॥

शा० भा०—नायमात्मा प्रवचनेनानेकवेदस्वीकरणेन लभ्यो ज्ञेयो नापि मेधया ग्रन्थार्थधारणशक्त्या । न बहुना श्रुतेन केवलेन । केन तर्हि लभ्य इत्युच्यते—यमेव स्वात्मानमेष साधको वृणुते प्रार्थयते तेनैवात्मना स्वयमात्मा लभ्यो ज्ञायत एवमित्येतत् । निष्कामस्यात्मानम् एव प्रार्थयत आत्मनैवात्मा लभ्यत इत्यर्थः । कथं लभ्यत इत्युच्यते—तस्यात्मकामस्यैष आत्मा विवृणुते प्रकाशयति पारमार्थिकीं तनूं स्वां स्वकीयां स्वयाथात्म्यमित्यर्थः ॥ २३ ॥

हिन्दी—यह आत्मा वेदाध्ययन से नहीं प्राप्त हो सकता; न मेधा (ग्रन्थार्थ-धारणशक्ति) से, न बहुत अध्ययन से [(ही) प्राप्त हो सकता है] । यह [साधक] जिस [आत्मा] का वरण करता है, उस आत्मा से ही यह प्राप्य है । यह आत्मा अपने स्वरूप को उस [साधक] के प्रति प्रकट कर देता है ॥२३॥

१. "यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः" इस खण्ड का अनुवाद बोथलिङ्क, ह्विटनी, मैक्समूलर, डायसन, हर्टल, हिलेब्राण्ड्ट् गेल्डनर, कार्पेण्टियर, राउसन, आटो, रेनो आदि लोग निम्नलिखित रूप से करते हैं :—
"यह [आत्मा] जिस [साधक] को चुनता है, उसीके द्वारा लभ्य है ।" राधाकृष्णन् का भी यही मत है ।

—प्रिन्सिपल उपनिषद्स्, पृष्ठ ६१९ ।

कार्पेण्टियर का कहना है कि "तेन" को हटा देना चाहिए, क्योंकि इस शब्द को किसी ऐसे व्यक्ति ने प्रक्षिप्त कर दिया जो "लभ्यस्तस्य" का अर्थ नहीं समझता था ।—इण्डियन ऐण्टक्वेरी ५७, पृष्ठ १३१ ।

२. "तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्" इस खण्ड का अनुवाद मैक्समूलर और ह्विटनी आदि निम्नलिखित रूप से करते हैं :—
"यह आत्मा उसे (अपने शरीर को) अपने रूप में चुनता है ।"

३. (१) इस श्लोक को कुछ पाश्चात्य विद्वान् प्रक्षिप्त मानते हैं, क्योंकि कठोपनिषद् के इस स्थल पर इसकी सङ्गति नहीं है। देखिए हर्टल—वाइसहाइट देयर उपनिषदेन; पृष्ठ ५६; और हिलेब्राण्ड्ट: आउस ब्राह्मणाज उण्ट उपनिषदेन, पृष्ठ १२२।

(२) इस मन्त्र का समानार्थक मन्त्र—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनूं स्वाम्॥

—मुण्डकोपनिषद् ३-२-३।

किं चान्यत्—

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्॥२४॥[१]

अन्वय—न दुश्चरितात् अविरतः; न अशान्तः; न असमाहितः, न वा अशान्तमानसः अपि एनं प्रज्ञानेन आप्नुयात्॥ २४॥

शा० भा०—न दुश्चरितात्प्रतिषिद्धात् श्रुतिस्मृत्यविहितात्पापकर्मणोऽविरतः अनुपरतो नापीन्द्रियलौल्याद् अशान्तोऽनुपरतो नाप्यसमाहितोऽनेकाग्रमना विक्षिप्तचित्तः, समाहितचित्तोऽपि सन्समाधानफलार्थित्वान्नाप्यशान्तमानसो व्यापृतचित्तः प्रज्ञानेन ब्रह्मविज्ञानेनैनं प्रकृतमात्मानमाप्नुयात्। यस्तु दुश्चरिताद्विरत इन्द्रियलौल्याच्च समाहितचित्तः समाधानफलादप्युपशान्तमानसश्चाचार्यवान्प्रज्ञानेन यथोक्तमात्मानं प्राप्नोतीत्यर्थः॥ २४॥

हिन्दी—जो पापकर्मों से विरत नहीं हुआ है (अर्थात् जो पापकर्मों में लगा हुआ है), जिसकी इन्द्रियाँ अशान्त (चंचल) हैं, जिसका मन एकाग्र नहीं है, जिसका मन अशान्त है, वह सम्यक् ज्ञान के द्वारा इस [आत्मा] को नहीं प्राप्त कर सकता॥ २४॥

१. इस मन्त्र के समानार्थक मन्त्र भिन्न-भिन्न स्थलों पर पाए जाते हैं—

(१) ऋतस्य पन्था न तरन्ति दुष्कृतः।   —ऋग्वेद ९-७३-६।

(२) सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ।
अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ॥

—मुण्डकोपनिषद् ३-१-५ ।

(३) न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा ।
ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः ॥

—मुण्डकोपनिषद् ३-१-८ ।

(४) तदेतदृचाभ्युक्तम्—

एष नित्यो महिमा ब्राह्मणस्य न वर्धते कर्मणा नो कनीयान् ।
तस्यैव स्यात् पदवित् तं विदित्वा न लिप्यते कर्मणा पापकेनेति ॥

तस्मादेवंविच्छान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वात्मन्येवात्मानं पश्यति । सर्वमात्मानं पश्यति । नैनं पाप्मा तरति । सर्वं पाप्मानं तरति । नैनं पाप्मा तपति । सर्वं पाप्मानं तपति । विपापो विरजोऽविचिकित्सो ब्राह्मणो भवति । एष ब्रह्मलोकः सम्राट् ।

—बृहदारण्यकोपनिषद् ४-४-२३ ।

यस्त्वनेवम्भूतः—

यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनः ।
मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः ॥ २५ ॥

अन्वय— यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे ओदनः भवतः, यस्य मृत्युः उपसेचनम्, सः यत्र [तत्] इत्था कः वेद ॥ २५ ॥

शा० भा०—यस्यात्मनो ब्रह्मक्षत्रे सर्वधर्मविधारकेऽपि सर्वत्राणभूते उभे ओदनोऽशनं भवतः स्याताम्, सर्वहरोऽपि मृत्युर्यस्योपसेचनम् इवौदनस्य, अशनत्वेऽप्यपर्याप्तस्तं प्राकृतबुद्धिर्यथोक्तसाधनरहितः सन् क इत्था इत्थमेवं यथोक्तसाधनवानिवेत्यर्थः वेद विजानाति यत्र स आत्मेति ॥ २५ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यगोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यश्रीमदाचार्य श्रीशङ्करभगवतः कृतौ कठोपनिषद्भाष्ये प्रथमाध्याये द्वितीयवल्लीभाष्यं समाप्तम् ॥ २ ॥

हिन्दी—जिस आत्मा के ब्राह्मण और क्षत्रिय ओदन [भात] हैं, जिसका मृत्यु उपसेचन [दाल आदि] है, वह जहाँ है [उसे] कौन (सामान्य पुरुष) इस प्रकार [यथोक्त साधनयुक्त अधिकारी की भाँति] जान सकता है ॥ २५ ॥

द्वितीयवल्ली समाप्त

तृतीया वल्ली

ऋतं पिबन्तावित्यस्याः वल्लयाः सम्बन्धः—

विद्याविद्ये नानाविरुद्धफले इत्युपन्यस्ते न तु सफले ते यथावन्निर्णीते; तन्निर्णयार्था रथरूपककल्पना, तथा च प्रतिपत्तिसौकर्यम् । एवं च प्राप्तृप्राप्यगन्तृ-गन्तव्यविवेकार्थं द्वावात्मानौ उपन्यस्येते—

ऋतं[1] पिबन्तौ[2] सुकृतस्य लोके
गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे ।[3]
छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति
पञ्चाग्नयो[4] ये च त्रिणाचिकेताः[5] ॥ १ ॥

अन्वय—ब्रह्मविदः ये च पञ्चाग्नयः, [ये च] त्रिणाचिकेताः [ते] सुकृतस्य ऋतं पिबन्तौ लोके गुहां परमे परार्धे प्रविष्टौ छायातपौ वदन्ति ॥ १ ॥

शा० भा०—ऋतं सत्यमवश्यम्भावित्वात् । कर्मफलं पिबन्तौ, एकस्तत्र कर्मफलं पिबति भुङ्क्ते नेतरः तथापि पातृसबंधात्पिबन्तावित्युच्यते छत्रिन्यायेन । सुकृतस्य स्वयंकृतस्य कर्मण ऋतमिति पूर्वेण सम्बन्धः । लोकेऽस्मिन् शरीरे गुहां गुहायां बुद्धौ प्रविष्टौ, परमे बाह्यपुरुषाकाशसस्थानापेक्षया परमं, परस्य ब्रह्मणोऽर्धं स्थानं परार्धम् । तस्मिन्हि परं ब्रह्मोपलभ्यते, अतस्तस्मिन्परमे परार्धे हार्दाकाशे प्रविष्टावित्यर्थः । तौ च च्छायातपाविव विलक्षणौ संसारित्वासंसारित्वेन ब्रह्मविदो वदन्ति कथयन्ति । न केवलमकर्मिण एव वदन्ति, पञ्चाग्नयो गृहस्था ये च त्रिणाचिकेताः त्रिःकृत्वो नाचिकेतोऽग्निश्चितो यैस्ते त्रिणाचिकेताः ॥ १ ॥

हिन्दी—ब्रह्मज्ञानी लोग और पञ्चाग्नि की उपासना करनेवाले तथा नाचिकेत अग्नि का तीन बार चयन करनेवाले कहते हैं—[कि] अपने कर्म

का फल भोगनेवाले, शरीर में बुद्धिरूप गुहा के भीतर परम ब्रह्मस्थान (हार्दाकाश) में प्रविष्ट छाया और घाम हैं। अर्थात् छाया और घाम की भाँति दो विलक्षण तत्त्व हैं ॥ १ ॥

१. ऋतम्—शाश्वत नियम। सुकृतस्य = अपने द्वारा कृत कर्म का ऋत अर्थात् कर्मफल।

२. पिबन्तौ—पान करते हुए अर्थात् कर्मफल भोगते हुए।

३. परार्धे—परस्य ब्रह्मणः अर्थात् परब्रह्मणः अर्धं स्थानं परार्धम् हार्दाकाशः तस्मिन्।

४. पञ्चाग्नयः—गार्हपत्य, दक्षिण, आहवनीय, सभ्य और आवसथ्य—ये पाँच अग्नियाँ हैं। इनकी स्थापना करनेवाले गृहस्थों को पञ्चाग्नि कहते हैं।

५. त्रिणाचिकेता—त्रिःकृत्वो नाचिकेतोऽग्निश्चितो यैस्ते त्रिणाचिकेताः। नचिकेत अग्नि का तीन बार चयन करनेवाले।

६. इस श्लोक में जीव और ब्रह्म को क्रमशः छाया और आतप की भाँति कहा गया है। यद्यपि जीव कर्मफल भोगता है और ब्रह्म कर्मफल नहीं भोगता; फिर भी छत्रिन्याय से दोनों को कर्मफल का भोक्ता बताया गया। जैसे, बहुत-से जानेवाले लोगों में कुछ के पास छाता हो और कुछ लोगों के पास छाता न हो तब भी कह दिया जाता है कि "छातेवाले लोग जा रहे हैं।" इसे "छत्रिन्याय" कहते हैं। इसी प्रकार यहाँ यद्यपि भोक्ता जीव ही कर्मफल भोगता है, ब्रह्म नहीं, फिर भी छत्रिन्याय से दोनों को कर्मफल का भोक्ता कहा गया है।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥

—ऋग्वेद १-१६४-४०।
—मुण्डकोपनिषद् ३-१।
—श्वेताश्वतरोपनिषद् ४-६।

यः सेतुरीजानानामक्षरं ब्रह्म यत्परम्।
अभयं तितीर्षतां पारं नाचिकेतँ शकेमहि ॥ २ ॥[1]

अन्वय—यः ईजानानां सेतुः, यत् अक्षरं परं ब्रह्म, [यच्च] तितीर्षताम् अभयं पारं [तं] नाचिकेतं [ज्ञातुं] शकेमहि ॥ २ ॥

शा० भा०—यः सेतुरिव सेतुरीजानानां यजमानानां कर्मिणां दुःखसन्तरणार्थत्वान्नाचिकेतोऽग्निस्तं वयं ज्ञातुं च शकेमहि शक्नुवन्तः। किं च यच्चाभयं भयशून्यं संसारपारं तितीर्षतां ततुमिच्छतां ब्रह्मविदां यत्परमाश्रयमक्षरमात्माख्यं ब्रह्म तच्च ज्ञातुं शकेमहि शक्नुवन्तः। परापरे ब्रह्मणी कर्मब्रह्मविदाश्रये वेदितव्ये इति वाक्यार्थः एतयोरेव। ह्युपन्यासःकृत ऋतं पिबन्ताविति ॥ २ ॥

हिन्दी—जो यज्ञ करनेवालों का सेतु है, उस नाचिकेत अग्नि को, [और] जो तैरने की इच्छावालों का भयशून्य पार—किनारा है [उस] अक्षर ब्रह्म को [हम जानने में] समर्थ हों ॥ २ ॥

(१) मैक्सम्यूलर के अनुसार द्वितीय वल्ली के प्रथम और द्वितीय श्लोक सम्भवतः प्रक्षिप्त हैं, किन्तु यह कथन असंगत प्रतीत होता है।

तत्र य उपाधिकृतः संसारी विद्याविद्ययोरधिकृतो मोक्षगमनाय संसारगमनाय तस्य तदुभयगमने साधनो रथः कल्प्यते—

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥ ३ ॥[1]
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥ ४ ॥

अन्वय—आत्मानं रथिनं विद्धि। शरीरं तु रथमेव [विद्धि] बुद्धिं तु सारथिं विद्धि। मनः च प्रग्रहमेव [विद्धि [॥ ३ ॥

इन्द्रियाणि हयान् आहुः। तेषु [इन्द्रियेषु [हयत्वेन परिकल्पितेषु विषयान् गोचरान् [विद्धि]। आत्मेन्द्रियमनोयुक्तम् आत्मानं भोक्तेत्याहुः ॥ ४ ॥

शा० भा०—तत्रात्मानमृतपं संसारिणं रथिनं रथस्वामिनं विद्धि जानीहि। शरीरं रथमेव तु रथबद्धहयस्थानीयैरिन्द्रियैराकृष्यमाणत्वाच्छरीरस्य। बुद्धिं तु अध्यवसायलक्षणां सारथिं विद्धि बुद्धिनेतृप्रधानत्वाच्छरीरस्य सारथिनेतृप्रधान इव रथः।

सर्वं हि देहगतं कार्यं बुद्धिकर्तव्यमेव प्रायेण । मनः संङ्कल्पविकल्पादिलक्षणं प्रग्रहं रशनां विद्धि । मनसा हि प्रगृहीतानि श्रोत्रादीनि करणानि प्रवर्तन्ते रशनयेवाश्वाः ॥३॥

इन्द्रियाणि चक्षुरादीनि हयान् आहू रथकल्पनाकुशलाः शरीरथाकर्षण-सामान्यात् । तेष्वेव इन्द्रियेषु हयत्वेन परिकल्पतेषु गोचरान्मार्गान् रूपादीन् विषयान् विद्धि । आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं शरीरेन्द्रियमनोभिः सहितं संयुक्तमात्मानं भोक्तेति संसारीत्याहुर्मनीषिणो विवेकिनः । न हि केवलस्यात्मनो भोक्तृत्वमस्ति बुद्ध्याद्युपाधिकृतमेव तस्य भोक्तृत्वम् । तथा च श्रुत्यन्तरं केवलस्याभोक्तृत्वमेव दर्शयति— 'ध्यायतीव लेलायतीव' (बृह० उ० ४-४-७) इत्यादि । एवं च सति वक्ष्यमाणरथकल्पनया वैष्णवस्य पदस्यात्मतया प्रतिपत्तिरुपपद्यते नान्यथा स्वभावानतिक्रमात् ॥ ४ ॥

हिन्दी-आत्मा को रथी (रथ का सवार) समझो । शरीर को रथ जानो । बुद्धि को सारथि (रथ का हाँकनेवाला) और मन को लगाम समझो ॥ ३ ॥ विवेकी लोग इंद्रियों को अश्व कहते हैं [उन इंद्रियों के अश्व रूप में कल्पित हो जाने पर] विषयों को मार्ग कहते हैं । शरीर, इंद्रिय तथा मन-सहित आत्मा को भोक्ता कहते हैं ॥ ४ ॥

(१) रोअर, मैक्सम्यूलर तथा राधाकृष्णन् शांकरभाष्य का अनुसरण करते हुए आत्मा का अर्थ शरीर करते हैं । यही अर्थ रथरूपक कल्पना में सङ्गत भी लगता है ।

(२) "आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः"

१. ह्विटनी स्वत्व, इंद्रिय तथा मन से युक्त [आत्मा] को मनीषी भोक्ता कहते हैं । —ट्रांसऐक्शन्स २१, पृष्ठ १०३ ।

२. कार्पेण्टियर "मनीषिणः इन्द्रियगमनोयुक्तम् आत्मा भोक्तेत्याहुः" इस प्रकार से अन्वय समझते हुए कहते हैं कि मनीषी लोग इंद्रिय तथा मन से युक्त आत्मा को भोक्ता कहते हैं ।—इण्डियन एण्टिक्वेरी ५७, पृष्ठ २२८ ।

डाउसन भी ऐसा ही अर्थ करते हैं ।

इन तीन वर्गों के विद्वानों में द्वितीय वर्ग के रोअर, मैक्सम्यूलर, राधाकृष्णन् आदि का शांकरभाष्यानुसारी अर्थ ही साधु है ।

यस्त्वविज्ञानवान्भवत्ययुक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः ॥ ५ ॥
यस्तु विज्ञानवान्भवति युक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः ॥ ६ ॥

अन्वय—अविज्ञानवान् यः सदा अयुक्तेन मनसा भवति तस्य इन्द्रियाणि सारथेः दुष्टाश्वा इव अवश्यानि ॥ ५ ॥

विज्ञानवान् यः सदा युक्तेन मनसा भवति तस्य इन्द्रियाणि सारथेः सदश्वा इव वश्यानि ॥ ६ ॥

शा० भा०—तत्रैवं सति यस्तु बुद्ध्याख्यः सारथिरविज्ञानवाननिपुणोऽविवेकी प्रवृत्तौ च निवृत्तौ च भवति यथेतरो रथचर्यायामयुक्तेन अप्रगृहीतेनाससमाहितेन मनसा प्रग्रहस्थानीयेन सदा युक्तो भवति तस्याकुशलस्य बुद्धिसारथेः इन्द्रियाण्यश्वस्थानीयान्यवश्यानि अशक्यनिवारणानि दुष्टाश्वा अदान्ताश्वा इवेतर-सारथेर्भवन्ति ॥ ५ ॥

यस्तु पुनः पूर्वोक्तविपरीतः सारथिर्भवति विज्ञानवान्प्रगृहीतमनाः समाहित-चित्तः सदा तस्याश्वस्थानीयानीन्द्रियाणि प्रवर्तयितुं निवर्तयितुं वा शक्यानि वश्यानि दान्ताः सदश्वा इवेतरसारथेः ॥ ६ ॥

हिन्दी—जो [बुद्धिरूप सारथि] अविवेकी और सर्वदा असमाहित चित्त से युक्त होता है, उसकी इन्द्रियाँ वैसे ही वश में नहीं रहतीं जैसे सारथि के वश में दुष्ट घोड़े [नहीं रहते] ॥ ५ ॥

जो [बुद्धिरूप सारथि] विवेकी और सर्वदा समाहित चित्त से युक्त होता है उसकी इन्द्रियाँ वैसे ही वश में रहती हैं, जैसे सारथि के वश में अच्छे घोड़े [रहते हैं] ॥ ६ ॥

यस्त्वविज्ञानवान्भवत्यमनस्कः सदाशुचिः।
न स तत्पदमाप्नोति संसारं चाधिगच्छति ॥ ७ ॥
यस्तु विज्ञानवान्भवति समनस्कः सदा शुचिः।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते ॥ ८ ॥

अन्वय—यस्तु अविज्ञानवान् अमनस्कः सदा अशुचिः भवति, सः तत्पदं न आप्नोति संसारं च अधिगच्छति ।। ७ ।। यस्तु विज्ञानवान् समनस्कः सदा शुचिः भवति, सतु तत्पदम् आप्नोति यस्माद् भूयो न जायते ।। ८ ।।

शा० भा०—यस्त्वविज्ञानवान्भवति अमनस्कोऽप्रगृहीतमनस्कः स तत एवाशुचिः सदैव, न स रथी तत्पूर्वोक्तमक्षरं यत्परं पदम् आप्नोति तेन सारथिना । न केवलं कैवल्यं नाप्नोति संसारं च जन्ममरणलक्षणमधिगच्छति ।। ७ ।।

यस्तु द्वितीयो विज्ञानवान् विज्ञानवत्सारथ्युपेतो रथी विद्वान् इत्येतत् युक्तमनाः समनस्कः स तत एव सदा शुचिः स तु तत्पदमाप्नोति, यस्मादाप्तात्पदाद् अप्रच्युतः सन् भूयः पुनर्न जायते संसारे ।। ८ ।।

हिन्दी—जो अविज्ञानवान्, असमाहितचित्त और अपवित्र रहता है वह उस पद को नहीं प्राप्त करता, अपितु संसार को प्राप्त होता है ।।७।। जो विज्ञानवान्, समाहितचित्त और सदा पवित्र रहता है वह उस पद को प्राप्त करता है, जहाँ से फिर उत्पन्न नहीं होता ।। ८ ।।

किं तत्पदमित्याह—

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवान्नरः ।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ।। ९ ।।

अन्वय—यः विज्ञानसारथिः मनः प्रग्रहवान् [अस्ति] सः नरः अध्वनः पारं तद् विष्णोः परमं पदम् आप्नोति ।। ९ ।।

शा० भा०—विज्ञानसारथिर्यस्तु यो विवेकबुद्धिसारथिः पूर्वोक्तमनःप्रग्रहवान् प्रगृहीतमनाः समाहितचित्तः सञ्शुचिर्नरो विद्वान् सोऽध्वनः संसारगतेः पारं परमेव अधिगन्तव्यमित्येतदाप्नोति मुच्यते सर्वसंसारबन्धनैः तद्विष्णोः व्यापनशीलस्य ब्रह्मणः परमात्मनो वासुदेवाख्यस्य परमं प्रकृष्टं पदं स्थानं सतत्त्वमित्येतद्यदसौ आप्नोति विद्वान् ।। ९ ।।

हिन्दी—जो मनुष्य विवेकी बुद्धिरूप सारथि से युक्त तथा मनरूप लगाम से युक्त होता है, वह संसारमार्ग के परम गन्तव्य विष्णु के परमपद को प्राप्त करता है ।। ९ ।।

अधुना यत्पदं गन्तव्यं तस्य इन्द्रियाणि स्थूलान्यारभ्य सूक्ष्मतारतम्यक्रमेण प्रत्यगात्मतया अधिगम कर्तव्यः इत्येवमर्थमिदमारभ्यते—

[1]इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः ॥ १० ॥
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः ।
पुरुषान्न परं किञ्चित्सा काष्ठा सा परा गतिः ॥ ११ ॥

अन्वय—इन्द्रियेभ्यः परा अर्थाः हि । अर्थेभ्यः च परं मनः । मनसः तु परा बुद्धिः । बुद्धे परः महान् आत्मा ॥ १० ॥ महतः परम् अव्यक्तम् । अव्यक्तात् परः पुरुषः । पुरुषात् परं न किञ्चित् । सा काष्ठा सा परा गतिः ॥ ११ ॥

शा० भा०—स्थूलानि तावदिन्द्रियाणि तानि यैरर्थरात्मप्रकाशनाय आरब्धानि तेभ्य इन्द्रियेभ्यः स्वकार्येभ्यस्ते परा ह्यर्थाः सूक्ष्मा महान्तश्च प्रत्यगात्मभूताश्च । तेभ्योऽप्यर्थेभ्यश्च परं सूक्ष्मतरं महत्प्रत्यगात्मभूतं च मनः । मनःशब्दवाच्यं मनस आरम्भकं भूतसूक्ष्मं सङ्कल्पविकल्पाद्यारम्भकत्वात् । मनसोपि परा सूक्ष्मतरा महत्तरा प्रत्यगात्मभूता च बुद्धः बुद्धिशब्दवाच्यमध्यवसायाद्यारम्भकं भूतसूक्ष्मम् । बुद्धेरात्मा सवप्राणिबुद्धानां प्रत्यगात्मभूतत्वादात्मा महान्सर्वमहत्त्वात् । अव्यक्ताद्यत्प्रथमं जातं हैरण्यगर्भं तत्त्वं बोधाबोधात्मकं महानात्मा बुद्धः पर इत्युच्यते ॥ १० ॥

महतोऽपि परं सूक्ष्मतरं प्रत्यगात्मभूतं सर्वमहत्तरं च अव्यक्तं सर्वस्य जगतो बीजभूतम् अव्याकृतनामरूपसतत्त्वं सर्वकार्यकारणशक्तिसमाहाररूपम् अव्यक्ताव्याकृताकाशादिनामवाच्यं परमात्मन्योतप्रोतभावेन समाश्रितं वटकणिकायामिव वटवृक्षशक्तिः । तस्मादव्यक्तात्परः सूक्ष्मतरः सर्वकारणकारणत्वात् प्रत्यगात्मत्वाच्च महांश्च अत एव पुरुषः सर्वपूरणात् । ततोऽन्यस्य परस्य प्रसङ्गं निवारयन्नाह-पुरुषान्न परं किञ्चिदिति । यस्मान्नास्ति पुरुषात् चिन्मात्रघनात्परं किञ्चिदपि वस्त्वन्तर तस्मात् सूक्ष्मत्वमहत्त्वप्रत्यगात्मत्वानां सा काष्ठा निष्ठा पर्यवसानम् । तत्र हीन्द्रियेभ्य आरभ्य सूक्ष्मत्वादिपरिसमाप्तिः । अत एव च

गन्तॄणां सर्वगतिमतां संसारिणां परा प्रकृष्टा गतिः—"यद् गत्वा न निवर्तन्ते" (गीता ८।२१;१५।६) इति स्मृतेः। ननु गतिश्चेदागत्यापि भवितव्यम्। कथं यमाद् भूयो न जायत इति। नैष दोषः, सर्वस्य प्रत्यगात्मत्वादवगतिरेव गति-रित्युपचर्यते। प्रत्यगात्मत्वं च दर्शितमिन्द्रियमनोबुद्धिपरत्वेन। यो हि गन्ता सोऽगतमप्रत्यग्रूपं गच्छत्यनात्मभूतं न विपर्ययेण। तथा च श्रुतिः—"अनध्वगा अध्वसु पारयिष्णवः" इत्याद्या ॥ ११ ॥

हिन्दी—[चक्षुरादि] इन्द्रियों से उनके विषय [रूपादि] पर हैं। विषयों से मन पर है। मन से बुद्धि पर है। बुद्धि से महान् आत्मा (महत्तत्त्व) पर है ॥ १० ॥

महत् से अव्यक्त (मूलप्रकृति) पर है। अव्यक्त से पुरुष पर है। पुरुष से पर कुछ नहीं है। वह [पुरुष] पराकाष्ठा है। वह (पुरुष) परा गति (गन्तव्य) है ॥ ११ ॥

[पर का अर्थ है सूक्ष्मतर, महत्तर और प्रत्यगात्मभूत; अर्थात् इन्द्रियों से लेकर पुरुष तक उत्तरोत्तर तत्त्व अपने पूर्ववर्ती तत्त्व की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म है, महान् है और उसका प्रत्यक् स्वरूप है।

१. समानार्थक मन्त्र—

इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्त्वमुत्तमम्।
सत्त्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम् ॥
अव्यक्तात्तु परः पुरुषो व्यापकोऽलिङ्ग एव च।
यं ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति ॥

—कठोपनिषद् ६-७-८।

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥

—गीता ३-४२।

तथा च दर्शयति प्रत्यगात्मत्वं सर्वस्य—

एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते।
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ॥ १२ ॥

अन्वय—सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा एषः न प्रकाशते। सूक्ष्मबुद्धिभिः तु अग्रचया सूक्ष्मया बुद्धचा दृश्यते ॥ १२ ॥

शा० भा०—एष पुरुषः सर्वेषु ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तेषु भूतेषु गूढः संवृतो दर्शनश्रवणादिकर्माविद्यामायाच्छन्नोऽत एवात्मा न प्रकाशते आत्मत्वेन कस्यचित्। अहो अतिगम्भीरा दुरवगाह्या विचित्रा माया चेयं यदयं सर्वो जन्तुः परमार्थतः परमार्थसतत्त्वोऽप्येवं बोध्यमानोऽहं परमात्मेति न गृह्णात्यनात्मानं देहेन्द्रियादिसंघातमात्मनो दृश्यमानमपि घटादिवदात्मत्वेनाहममुष्य पुत्र इत्यनुच्यमानोऽपि गृह्णाति। नूनं परस्यैव मायया मोमुह्यमानः सर्वो लोकः बम्भ्रमतीति। तथा च स्मरणम्—"नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः" (गीता ७।२५) इत्यादि।

ननु विरुद्धमिदमुच्यते "मत्वा धीरो न शोचति" (कठ उप० २।१।४) "न प्रकाशते" (कठ उप० ३।१।१२) इति च। नैतदेवम्। असंस्कृतबुद्धेरविज्ञेयत्वान्न प्रकाशत इत्युक्तम्। दृश्यते तु संस्कृतया अग्रचया अग्रमिव अग्रचा तया, एकाग्रतयोपेतयेत्येतत्, सूक्ष्मया सूक्ष्मवस्तुनिरूपणपरया; कैः ? सूक्ष्मदर्शिभिः।

"इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था" इत्यादिप्रकारेण सूक्ष्मतापारम्पर्यदर्शनेन परं सूक्ष्मं द्रष्टुं शीलं येषां ते सूक्ष्मदर्शिनस्तैः सूक्ष्मदर्शिभिः पण्डितैरित्येतत् ॥ १२ ॥

हिन्दी—सभी भूतों में छिपा हुआ यह आत्मा प्रकाशित नहीं होता। सूक्ष्मदर्शी—पण्डितों के द्वारा एकाग्र [और] सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा [यह आत्मा] देखा जाता है ॥ १२ ॥

तत्प्रतिपत्त्युपायमाह—

यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि।

ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि ॥ १३ ॥[1]

अन्वय—प्राज्ञः वाक् मनसी यच्छेत्। तत् [मनः] ज्ञाने आत्मनि [बुद्धौ] यच्छेत्। ज्ञानं [बुद्धि] महति आत्मनि नियच्छेत्। तत् [महत्] शान्ते आत्मनि यच्छेत् ॥ १३ ॥

शा० भा०—यच्छेन्नियच्छेदुपसंहरेत्प्राज्ञो विवेकी; किम् ? वाग्वाचम्। वागत्रोपलक्षणार्था सर्वेषामिन्द्रियाणाम्। क्व ? मनसी। मनसीतिच्छान्दसं दैर्घ्यम्।

तच्च मनो यच्छेज्ज्ञाने प्रकाशस्वरूपे बुद्धौ आत्मनि। बुद्धिर्हि मनआदिकरणान्याप्नोतीत्यात्मा प्रत्यक् तेषाम्। ज्ञानं बुद्धिमात्मनि महति प्रथमजे नियच्छेत्। प्रथमजवत् स्वच्छस्वभावकमात्मनो विज्ञानम् आपादयेदित्यर्थः। तं च महान्तम् आत्मान यच्छेच्छान्ते सर्वविशेषप्रत्यस्तमितरूपेऽविक्रिये सर्वान्तरे सर्वबुद्धिप्रत्ययसाक्षिणि मुख्य आत्मनि ॥ १३ ॥

हिन्दी—विवेकी वाग्-इन्द्रिय [उपलक्षण से सभी इन्द्रियों] का मन में उपसंहार करे। मन का ज्ञान अर्थात् प्रकाशस्वरूप बुद्धि में उपसंहार करे। प्रकाशस्वरूप बुद्धि को महत्तत्त्व में लीन करे। उस महत् स्वरूप को शान्त आत्मा में लीन करे ॥ १३ ॥

१. (अ) **रोअर**—"बुद्धिमान् वाणी को मन में लीन करे। मन को ज्ञानरूप बुद्धि में उपसंहृत करे। बुद्धि को महान् स्वरूप में लीन करे और महान् स्वरूप को शान्त स्वरूप में लीन करे॥"

—बिब्लिओथिका इण्डिका १५, पृष्ठ १०८।

(ब) **ह्विटनी**—"प्रज्ञावान् मनुष्य वाणी तथा मन का संयमन करे। उसको (उनको) बुद्धि में लीन करे। बुद्धि को महान् आत्मा में लीन करे। महान् आत्मा को शान्त आत्मा ये उपसंहृत करे।"

—ट्रान्सऐक्शन्स २१, पृष्ठ १०३।

(स) **मैक्सम्यूलर**—बुद्धिमान् वाणी और मन को नियमित करे। वह उनको उस स्वरूप में लीन करे जो ज्ञान है। ज्ञान को उस स्वरूप में लीन करे जो महान् है। इस [महान्] को उस स्वरूप में लीन करे जो शान्त है।"

—सैक्रेड बूक्स ऑफ द ईस्ट १५, पृष्ठ १३।

(द) "हम यहाँ तीन विभिन्न आत्माओं को पाते हैं—प्रतीयमान आत्मा, विश्वआत्मा (महान्) और परम आत्मा जो विश्वात्मा से परे पुरुष है।

—गेल्डनर

—रेल० लेसेसबूख, पृष्ठ १६४।

एवं पुरुष आत्मनि सर्वं प्रविलाप्य नामरूपकर्मत्रयं यन्मिथ्याज्ञानविजृम्भितं क्रियाकारकफललक्षणं स्वात्मयाथात्म्यज्ञानेन मरीच्युदकरज्जुसर्पगगनमलानीव

मरीचिरज्जुगगनस्वरूपदर्शनेनैव स्वस्थ: प्रशान्तात्मा कृतकृत्यो भवति यतोऽतस्तद्दर्शनार्थम्—

उत्तिष्ठत जाग्रत [1]प्राप्य वरान्निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया
दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति ॥ १४ ॥

अन्वय—उत्तिष्ठत। जाग्रत। वरान् प्राप्य निबोधत। कवयः क्षुरस्य निशिता दुरत्यया धारा [इव] तत् पथः दुर्गं वदन्ति ॥ १४ ॥

शा० भा०—अनाद्यविद्याप्रसुप्ता उत्तिष्ठत हे जन्तवः! आत्मज्ञानाभिमुखा भवत। जाग्रताज्ञाननिद्राया घोररूपायाः सर्वानर्थबीजभूतायाः क्षयं कुरुत। कथम्? प्राप्योपगम्य वरान् प्रकृष्टानाचार्यांस्तद्विदस्तदुपदिष्टं सर्वान्तरमात्मानमहमस्मीति निबोधतावगच्छत। न ह्युपेक्षितव्यमिति श्रुतिरनुकम्पयन्नाह मातृवत्। अतिसूक्ष्मबुद्धिविषयत्वाज्ज्ञेयस्य। किमिव सूक्ष्मबुद्धिरित्युच्यते। क्षुरस्य धाराग्रं निशिता तीक्ष्णीकृता दुरत्यया दुःखेनात्ययो यस्या सा दुरत्यया। यथा सा पद्भ्यां दुर्गमनीया तथा दुर्गं दुःसम्पाद्यमित्येतत् पथः पन्थानं तत्त्वज्ञानलक्षणं मार्गं कवयो मेधाविनो वदन्ति। ज्ञेयस्यातिसूक्ष्मत्वात्तद्विषयस्य ज्ञानमार्गस्य दुःसम्पाद्यत्वं वदन्तीत्यभिप्रायः ॥ १४ ॥

अन्वय—[हे जीवो!] उठो—अर्थात् आत्मज्ञान की ओर उन्मुख होओ। [अज्ञान-निद्रा से] जागो। श्रेष्ठ पुरुषों के पास जाकर ज्ञान प्राप्त करो। छूरे की तेज़ की गयी, दुस्तर धार [की भाँति] वह [ज्ञान-] मार्ग दुर्गम [है ऐसा] मेधावी लोग कहते हैं ॥ १४ ॥

१. **प्राप्य वरान्**—शङ्कराचार्य यहाँ वर का अर्थ "प्रकृष्ट आचार्य" करते हैं, किन्तु मैक्सम्यूलर, राधाकृष्णन् प्रभृति लोग वर का अर्थ वरदान करत हैं।

—राधाकृष्णन्-प्रिंसिपल उपनिषद्स, पृष्ठ ६२८

—मैक्सम्यूलर—सैक्रेड बुक्स ऑफ़ द ईस्ट १५, पृष्ठ १३।

तत्कथमतिसूक्ष्मत्वं ज्ञेयस्येत्युच्यते। स्थूला तावदियं मेदिनी शब्दस्पर्शरूपरसगन्धोपचिता सर्वेन्द्रियविषयभूता तथा शरीरम्। तत्रैकैकगुणापकर्षेण गन्धा

दीनां सूक्ष्मत्वमहत्त्वविशुद्धत्वनित्यत्वादितारतम्यं दृष्टमबादिषु यावदाकाशमिति ते गन्धादयः सर्व एव स्थूलत्वादिविकाराः शब्दान्ता यत्र न सन्ति किमु तस्य सूक्ष्मत्वादिनिरतिशयत्वं वक्तव्यमित्येतद्दर्शयति श्रुतिः—

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं
तथारसं नित्यमगन्धवच्च यत्।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं
निचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ॥ १५ ॥

अन्वय—यत् अशब्दम् अस्पर्शम् अरूपम् अव्ययम् अरसम् नित्यम् अगन्धवत् अनादि अनन्तं महतः परं तथा ध्रुवं च तत् निचाय्य मृत्युमुखात् प्रमुच्यते ॥ १५ ॥

शा० भा०—अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथारसं नित्यमगन्धवच्च यत् एतद् व्याख्यातं ब्रह्माव्ययम्—यद्धि शब्दादिमत्तद् व्येतीदं तु अशब्दादिमत्वादव्ययं न व्येति न क्षीयते, अत एव च नित्यम्। यद्धि व्येति तदनित्यमिदं तु न व्येत्यतो नित्यम्। इतश्च नित्यम् अनाद्यविद्यमान आदिः कारणम् अस्य तदिदमनादि। यद्धयादिमत्तत्कार्यत्वादनित्यं कारणे प्रलीयते यथा पृथिव्यादि। इदं तु सर्व-कारणत्वादकार्यमकार्यत्वान्नित्यम्। न तस्य कारणमस्ति यस्मिन्प्रलीयेत।

तथानन्तम् अविद्यमानोऽन्तः कार्यमस्य तदनन्तम्। यथा कदल्यादेः फलादिकार्योत्पादनेन अपि अनित्यत्वं दृष्टं न च तथाप्यन्तवत्त्वं ब्रह्मणः; अतोऽपि नित्यम्।

महतो महत्तत्त्वाद् बुद्ध्याख्यात्परं विलक्षणं नित्यविज्ञप्तिस्वरूपत्वात्सर्वसाक्षि हि सर्वभूतात्मत्वाद् ब्रह्म। उक्तं हि—"एष सर्वेषु भूतेषु (कठ० उप० १।३।१२) इत्यादि। ध्रुवं च कूटस्थं नित्यं न पृथिव्यादिवदापेक्षिकं नित्यत्वम्। तदेवम्भूतं ब्रह्मात्मानं निचाय्यावगम्य तमात्मानं मृत्युमुखान्मृत्युगोचरादविद्याकामकर्मलक्षणा-त्प्रमुच्यते विमुच्यते ॥ १५ ॥

हिन्दी—जो अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अव्यय, अरस, नित्य, गन्धरहित, अनादि, अनन्त, महत्तत्व से परे, ध्रुव—स्थिर है, उस (आत्मा) को जानकर मृत्यु के मुख से छूट जाता है ॥ १५ ॥

१. शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये क्रमशः कर्ण, त्वक्, नेत्र, रसना तथा घ्राण इन पाँचों इन्द्रियों के विषय हैं। आत्मा इन पाँचों इन्द्रियों का विषय नहीं है। अतएव उसे अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अरस और अगन्धवत् कहा गया। वह आत्मा अव्यय, नित्य, अनादि, अनन्त, महत्तत्व से परे और ध्रुव है। उस अमर आत्मतत्त्व के ज्ञान के द्वारा मनुष्य अमर हो जाता है।

प्रस्तुतविज्ञानस्तुत्यर्थमाह श्रुतिः—

नाचिकेतमुपाख्यानं मृत्युप्रोक्तँ सनातनम्।
उक्त्वा श्रुत्वा च मेधावी ब्रह्मलोके महीयते॥ १६॥

अन्वय—मेधावी सनातनं मृत्युप्रोक्तं नाचिकेतम् उपाख्यानम् उक्त्वा श्रुत्वा च ब्रह्मलोके महीयते॥ १६॥

शा० भा०—नाचिकेतं नचिकेतसा प्राप्तं नाचिकेतम्। मृत्युना प्रोक्तं मृत्युप्रोक्तमिदमाख्यानमुपाख्यानं वल्लीत्रयलक्षणं सनातनं चिरन्तनं वैदिकत्वादुक्त्वा ब्राह्मणेभ्यः श्रुत्वाचार्येभ्यो मेधावी ब्रह्मैव लोको ब्रह्मलोकस्तस्मिन्महीयत आत्मभूत उपास्यो भवतीत्यर्थः॥ १६॥

हिन्दी—नचिकेता के द्वारा प्राप्त [और] मृत्यु के द्वारा कहे गये इस सनातन उपाख्यान को कहकर और सुनकर बुद्धिमान् पुरुष ब्रह्मलोक में महिमान्वित होता है॥ १६॥

य इमं परमं गुह्यं श्रावयेद् ब्रह्मसंसदि।
प्रयतः श्राद्धकाले वा तदानन्त्याय कल्पते।
तदानन्त्याय कल्पत इति[2]॥ १७॥

अन्वय—यः प्रयतः ब्रह्म संसदि श्राद्धकाले वा इमं परमं गुह्यं श्रावयेद् तत् आनन्त्याय कल्पते। तत् आनन्त्याय कल्पते इति॥ १७॥

शा० भा०—यः कश्चिदिमंग्रन्थं परमं प्रकृष्टं गुह्यं गोप्यं श्रावयेद् ग्रन्थतोऽर्थतश्च ब्राह्मणानां संसदि ब्रह्मसंसदि प्रयतः शुचिर्भूत्वा श्राद्धकाले वा श्रावयेद् भुञ्जानानां

तच्छ्राद्धमस्यानन्त्यायानन्तफलाय कल्पते सम्पद्यते । द्विर्वचनमध्यायपरिसमाप्त्यर्थम् ॥ १७ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यगोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्य-
श्रीमदाचार्य श्रीशंकरभगवतः कृतौ कठोपनिषद्भाष्ये
प्रथमाध्याये तृतीयवल्लीभाष्यं समाप्तम् ॥ ३ ॥

इति कठोपनिषदि प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ।

हिन्दी—जो मनुष्य इस अत्यन्त गोप्य ग्रन्थ को पवित्र होकर ब्राह्मणों की सभा में अथवा श्राद्धवेला में सुनाता है, उसका वह श्राद्ध अनन्त फलवाला होता है, अनन्त फलवाला होता है ॥ १७ ॥

१. "ब्रह्मसंसद्" स्थान को तथा "श्राद्धकाल" समय को सूचित करता है ।

१. "**तदानन्त्याय कल्पते तदानन्त्याय कल्पत इति**"—इस द्विवचन को अधिकांश विद्वान् ग्रन्थ-समाप्ति का सूचक मानते हुए द्वितीय अध्याय को प्रक्षिप्त मानते हैं । इस विषय में निम्नलिखित स्थलों को देखें :—

(१) राधाकृष्णन्—प्रिन्सिपल उपनिषद्स्, ६२९ ।

(२) मैक्सम्यूलर—सैक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट १५, पृष्ठ XXiii–XXv ।

(३) वेबर—इन्दिशे ष्टूडियन २, पृष्ठ १९८ ।

(४) ह्विटनी—ट्रान्सऐक्शन्स २१, पृष्ठ १०४ ।

(५) डायसन— जेख्ट्जीक उपनिषद्स्, पृष्ठ २७८ ।

(६) हर्टल—वाइसहाइट देयर उपानिषदेन, पृष्ठ ४५ ।

(७) राउसन—कठोपनिषद्, पृष्ठ १४७ ।

(८) आटो—कठोपनिषद्, पृष्ठ २०, ५६ ।

तृतीयवल्ली समाप्त

॥ इति ॥

परिशिष्ट 'क'

उपनिषदों की सूची

१. ईशावास्योपनिषत्
२. केनोपनिषत्
३. कठोपनिषत्
४. प्रश्नोपनिषत्
५. मुण्डकोपनिषत्
६. माण्डूक्योपनिषत्
७. तैत्तिरीयोपनिषत्
८. ऐतरेयोपनिषत्
९. छान्दोग्योपनिषत्
१०. बृहदारण्यकोपनिषत्
११. श्वेताश्वतरोपनिषत्
१२. ब्रह्मबिन्दूपनिषत्
१३. कैवल्योपनिषत्
१४. जाबालोपनिषत्
१५. हंसोपनिषत्
१६. आरुणिकोपनिषत्
१७. गर्भोपनिषत्
१८. नारायणोपनिषत्
१९. नारायणोपनिषत्
२०. परमहंसोपनिषत्
२१. ब्रह्मोपनिषत्
२२. अमृतनादोपनिषत्
२३. अथर्वशिरोपनिषत्
२४. अथर्वशिखोपनिषत्
२५. मैत्रायण्युपनिषत्
२६. कौषीतकिब्राह्मणोपनिषत्
२७. बृहज्जाबालोपनिषत्
२८. नृसिंहपूर्वतापिन्युपनिषत्
२९. नृसिंहोत्तरतापिन्युपनिषत्
३०. कालाग्निरुद्रोपनिषत्
३१. मैत्रय्युपनिषत्
३२. सुबालोपदिषत्
३३. क्षुरिकोपनिषत्
३४. यन्त्रिकोपनिषत्
३५. सर्वसारोपनिषत्
३६. निरालम्बोपनिषत्
३७. शुकरहस्योपनिषत्
३८. वज्रसूचिकोपनिषत्
३९. तेजोबिन्दूपनिषत्
४०. नादबिन्दूपनिषत्
४१. ध्यानबिन्दूपनिषत्
४२. ब्रह्मविद्योपनिषत्
४३. योगतत्त्वोपनिषत्
४४. आत्मबोधोपनिषत्
४५. नारदपरिव्राजकोपनिषत्
४६. त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषत्
४७. सीतोपनिषत्
४८. योगचूडामण्युपनिषत्
४९. निर्वाणोपनिषत्
५०. मण्डलब्राह्मणोपनिषत्
५१. दक्षिणामूर्त्युपनिषत्
५२. शरभोपनिषत्
५३. स्कन्दोपनिषत्
५४. त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत्

५५. अद्वयतारकोपनिषत्
५६. रामरहस्योपनिषत्
५७. रामपूर्वतापिन्युपनिषत्
५८. रामोत्तरतापिन्युपनिषत्
५९. वासुदेवोपनिषत्
६०. मुद्गलोपनिषत्
६१. शाण्डिल्योपनिषत्
६२. पैंगलोपनिषत्
६३. भिक्षुकोपनिषत्
६४. महोपनिषत्
६५. शरीरकोपनिषत्
६६. योगशिखोपनिषत्
६७. तुरीयातीतोपनिषत्
६८. सन्यासोपनिषत्
६९. परमहंसपरिव्राजकोपनिषत्
७०. अक्षमालोपनिषत्
७१. अव्यक्तोपनिषत्
७२. एकाक्षरोपनिषत्
७३. अन्नपूर्णोपनिषत्
७४. सूर्योपनिषत्
७५. अक्ष्युपनिषत्
७६. अध्यात्मोपनिषत्
७७. कुण्डिकोपनिषत्
७८. सावित्र्युपनिषत्
७९. आत्मोपनिषत्
८०. पाशुपतब्रह्मोपनिषत्
८१. परब्रह्मोपनिषत्
८२. अवधूतोपनिषत्
८३. त्रिपुरातापिन्युपनिषत्
८४. देव्युपनिषत्
८५. त्रिपुरोपनिषत्
८६. कठरुद्रोपनिषत्
८७. भावनोपनिषत्
८८. रुद्रहृदयोपनिषत्
८९. योगकुण्डल्युपनिषत्
९०. भस्मजाबालोपनिषत्
९१. रुद्राक्षजाबालोपनिषत्
९२. गणपत्युपनिषत्
९३. जाबालदर्शनोपनिषत्
९४. तारसारोपनिषत्
९५. महावाक्योपनिषत्
९६. पंचब्रह्मोपनिषत्
९७. प्राणाग्निहोत्रोपनिषत्
९८. गोपालपूर्वतापिन्युपनिषत्
९९. गोपालोत्तरतापिन्युपनिषत्
१००. कृष्णोपनिषत्
१०१. याज्ञवल्क्योपनिषत्
१०२. वराहोपनिषत्
१०३. शाट्यायनीयोपनिषत्
१०४. हयग्रीवोपनिषत्
१०५. दत्तात्रेयोपनिषत्
१०६. गरुडोपनिषत्
१०७. कलिसंतरणोपनिषत्
१०८. जाबाल्युपनिषत्
१०९. सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषत्
११०. सरस्वतीरहस्योपनिषत्
१११. बह्वृचोपनिषत्
११२. मुक्तिकोपनिषत्

परिशिष्ट 'ख'

अन्य ग्रन्थों में कठोपनिषद् के मन्त्र

कठोपनिषद् के अनेक मन्त्र यत्रतत्र अविकल रूप से पाये जाते हैं। कहीं-कहीं ये मन्त्र कुछ शब्दों के अन्तर के साथ तथा कहीं-कहीं शब्दों से भिन्न होते हुए भी अर्थसादृश्य से युक्त होकर पाये जाते हैं। इस सदृशता का एकमात्र कारण नचिकेता की कथा का अत्यन्त लोकप्रिय होना ही है। कठोपनिषद् ही नहीं, अपितु ऐसी अनेक उपनिषदें हैं जिनके मन्त्र अविकल या विकलरूप में अन्य उपनिषदों में पाये जाते हैं। इसी को ध्यान में रखकर कर्नल जी० ए० जैकब ने 'उपनिषद् वाक्यकोश' तथा श्री गजानन शम्भु साजले ने 'उपनिषद् वाक्य महाकोश' जैसे उपनिषद्-कोशों की रचना की है। नीचे दिये गये कठोपनिषद् के मन्त्रों के समान मन्त्रोंवाले ग्रन्थों से कठोपनिषद् के मन्त्रों के समान मन्त्र द्रष्टव्य हैं।

कठोपनिषद् और श्रीमद्भगवद्गीता

१. न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित् ॥
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

—कठ १-२-१८।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

—गीता २-२०

२. सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपाँसि सर्वाणि च यद् वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं सङ्ग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥

—कठ १-२-१५

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं सङ्ग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥

—गीता ८-११।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम् ।। —गीता ८-१३

३. इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः ।।
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः।
पुरुषान्न परं किञ्चित् सा काष्ठा सा परा गतिः ।।

—कठ १-३-१०, ११

इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्त्वमुत्तमम्।
सत्त्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम् ।।
अव्यक्तात्तु परः पुरुषो व्यापकोऽलिङ्ग एव च।
यं ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति ।। —कठ २-३-७,८।

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ।। —गीता ३-४२।
परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात् सनातनः।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ।। —गीता ८-२०।

४. हन्ता चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ।।—कठ १-२-१९।
य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ।।—गीता २-१९।

५. श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः।
आश्चर्योऽस्य वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः ।।

—कठ १-२-७।

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ।।

—गीता २-२९।

६. अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः॥

—कठ १-२-२०

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः :
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।

—गीता ८-९

७. ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः। —कठ २-३-१
ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्। —गीता १५-१

८. न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥

—कठ २-१-१५

न तद् भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥ —गीता १५-६।

कठोपनिषद् और मुण्डकोपनिषद्

१. अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः।
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः॥

—कठ २-२-५।

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः।
जङ्घन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः॥

—मुण्डक १, खण्ड २, श्लोक ८।

अविद्यायामन्तरे वेष्ट्यमानाः स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः।
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः॥

मैत्रायणी ७-९।

२. नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूँस्वाम् ।।

—कठ १–२–२३।

—मुण्डक ३, खण्ड २ श्लोक ३।

कठोपनिषद् और श्वेताश्वतरोपनिषद्

१. अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः ।।

—कठ १–२–२०।

अणोरणीयान्महतो महीयानात्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः।
तमक्रतुं पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमीशम् ।।

—श्वेताश्वतर ३–२०।